भूमिका।

यह भक्तामर संस्कृत पाठ श्रीमानतुंगाचार्य रचित है और इस का शब्द अर्थ अन्वयार्थ भाषार्थ हमने लिखा है और भाषा पाठ पण्डित हेमराज कृत है कठिन शब्दों का अर्थ हमने लिखा है परन्तु काल दोष से अन्यमति लेखकों ने भक्तामर संस्कृत की ३९वीं और ४५वीं काव्य और भाषा पाठ के ३९ और ४४ छन्द में ऐसे शब्द प्रचलित कर दिये थे। जो स्त्री और पुरुषों की विषयेंद्रियों के नाम हैं जब कभी स्त्री और मरद या पिता और पुत्र या पुत्री मिल कर यह पाठ पढ़ा करते थे तो महा लज्जा का स्थान होता बलिक जब कभी कोई विषयी पण्डित कभी किसी स्त्री को यह पाठ पढ़ाता था तो बार बार इन शरमनाक शब्दों का उच्चारण करने से उस स्त्री के शील भंगका कारण होता था सो दैवयोग से तलाश के बाद शुद्ध पाठ मिल जाने से हमने संस्कृत का पाठ ठीक कर और संस्कृत के अर्थ के साथ भाषा का मिलान कर सर्व त्रुटियां दूरकर दोनों पाठ अति शुद्ध कर छापे हैं भाषा छन्द ३२ में रवि नहीं रव पढ़ो छन्द १३ में ढाकपत्र नहीं पीन पत्र पढ़ो।

इस स्तोत्र का नाम भक्तामर कहने का यह कारण है कि इस स्तोत्र के आदिमें भक्तामर पाठ होने से इसे भक्तामर कहते हैं अथवा जो भक्त शुद्ध मन करके इस स्तोत्रको नित प्रति पढ़े वह अमर कहिये देवता, अथवा अ कहिये नहीं, मर कहिये मरना यानि नहीं मरने वाले अर्थात सिद्ध होजाते हैं॥

भक्तामरस्तोत्रम् ।

वसन्त तिलकछन्दः ।

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगंयुगादा-
वालंबनं भवजले पततां जनानाम् ।१।

शब्दार्थ—भक्त=भजने वाले। अमर=देवता। प्रणत=प्रणाम करते। मौलि=मस्तक (मुकुट)। मणि=रत्न। प्रभा=कांति। उद्योतकं=प्रकाश करनेवाला। दलित=दूर कर दिया है। पाप=पाप रूपी। तमः=अंधेरा। वितान=समूह। सम्यक=भली प्रकार। प्रणम्य=प्रणाम करके। जिनपाद=जिनेन्द्र के चरण। युग=दो। युगादौ=युग के आदि में। आलम्बनं=सहारा। भवजल=संसाररूपी पानी अर्थात् संसार समुद्र। पततां=गिरते हुये। जन=जीव॥

अन्वयार्थ—भक्ति करनेवाले जो देवता उनके नमे हुए जो माथे उनके मुकुटों की मणि (रत्नों) की कांतिका भी प्रकाशक, दूर कर दिया है पाप रूप अन्धेरे का समूह जिसने और संसार रूपी जल (समुद्र में गिरते जीवों का सहारा ऐसा जो "युगादि में हुए" जिन का पाद युगल उस को भली भांति प्रणाम करके।

भावार्थ—यहां आचार्य कहते हैं कि हे प्रभो आपके चरणों में इतनी ज्योति है कि जिस समय इन्द्र नमस्कार करते हैं उनके मुकुटों में जड़े हुए जो रत्न जगमग जगमग करते हैं। वह चमक उन रत्नों में केवल आपके चरणों की प्रभा पड़ने से ही पैदा होती है आपके चरणपाप रूपी अंधेरे के नाशक, संसार रूपी समुद्र में गिरते हुए प्राणियों को हाथ से पकड़ कर बचाने वाले हैं।

आदि पुरुष आदीशजिन, आदिसुविधि करतार।
धर्म धुरन्धर परमगुरु, नमो आदि अवतार॥

॥ १५ मात्रा चौपाई छन्द ॥

नतसुर मुकुट रत्न छवि करें। अन्तर पाप तिमिर सब हरें॥
जिनपद बन्दूं मन वच काय। भवजल पतित उद्धरण सहाय ।१।

य:संस्तुत: सकलवाङ्मयतत्वबोधा,
दुद्भूतबुद्धिपटुभि:सुरलोकनाथै: ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्त हरैरुदारै:,
स्तोष्येकिलाहमपितं प्रथमं जिनेंद्रम् ॥२॥

शब्दार्थ—यः=जो। संस्तुतः=स्तुति किया गया। सकल=सभी। वाङ्मय (शास्त्र) तत्व=यथार्थसार। बोध=ज्ञान। उद्भूत=उत्पन्न हुई। बुद्धिः=ज्ञान। पटु=चतुर। सुरलोक=स्वर्ग। नाथ=स्वामी। स्तोत्र=स्तुतिः। जगत=संसार। त्रितय=तीन। अर्थात् स्वर्ग मर्त्य (मनुष्यलोक) पाताल। चित्त (दिल)। हरैः=हरने वाले। उदार=अच्छे। स्तोष्ये=स्तुति करता हूं। किल=निश्चय से। अहं=मैं। अपि=भी। तं=उसको। प्रथम=पहिले। जिनेन्द्र=आदि नाथ॥

अन्वयार्थ—समस्त शास्त्र के तत्वज्ञान से उत्पन्न हुई जो बुद्धि उस करके चतुर जो इन्द्र उन करके तीन लोकों के चित्त को हरने वाले उज्वल स्तोत्रों से जो स्तुति किया गया है उस आदि जिनेन्द्र की मैं भी स्तुति करता हूं॥

भावार्थ—इस द्वितीय छन्द में कवि (आचार्य) ने स्तोत्र रचने की प्रतिज्ञा करी है और यहां आचार्य कहते हैं कि इन्द्र जैसे बुद्धिमान् स्तोत्र कर्ता जिस प्रभु की स्तुति करते हैं उस भगवान् की मैं भी स्तुति करने लगा हूं॥

श्रुतिपारगइंद्रादिकदेव। जाकी स्तुति कीनी कर सेव॥
शब्द मनोहर अर्थ विशाल। तिसप्रभु की वरणुं गण माल।२।

आदि पुरुष=प्रथम पुरुष। आदिश जिन=प्रथम जिनदेव। आदि सुविध करतार=कर्मभूमिके आदि में विधिके कर्त्ता। धर्मधुरंधर=धर्म की धुरा (भार) के धारणेवाला॥

१—नतसुर=नत (नम्र) भक्त जो सुर=देवता। छवि=शोभा। अन्तर=भीतर का। पाप तिमिर=पाप रूपी अन्धेरा। वच=वाणी। काय=देह। भव=संसार। जल=(जलधि) समुद्र। पतित=गिरे हुए। उद्धरण=निकाललेना।

२—श्रुतिपारग=शास्त्र के पार जाने वाले। मनोहर=सुन्दर। विशाल=बहुत विस्तार वाला। प्रभु=स्वामी। गुणमाल=गुणों की माला (गुण समूह)॥

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चित पादपीठ,
स्तोतुसमुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिंदुबिंब,
मन्य:कइच्छतिजन: सहसाग्रहीतुम् ॥३॥

बुद्ध्या = बुद्धि से । बिना = बगैर । अपि = भी । विबुध = देवता । अर्चित = पूजित । पादपीठ = छोटी चौकी । स्तोतुं = स्तुति करने के लिये । समुद्यत = तैयार मति = बुद्धि । विगत = दूर होगई । त्रपा = लज्जा(शरम) । अहं = मैं । बालं = बच्चे को । विहाय = छोड़ कर । जल = पानी । संस्थित = ठहरा हुआ । इन्दु = चांद । बिम्ब = मण्डल । अन्य = दूसरा । कः = कौन । इच्छति = चाहता है । जनः = मनुष्य सहसा = जलदी ग्रहीतुं = पकड़ने को ॥

अन्वयार्थ—देवताओं करके पूजा गया है पादपीठ जिसका ऐसे हे स्वामिन् ! दूर होगई है लज्जा जिसकी ऐसा मैं बुद्धि से बिना ही स्तुति करणे को तैयार हुवा हूं, पानी में स्थित चान्द के प्रतिबिंब को बिना बालक के दूसरा कौन मनुष्य शीघ्र ग्रहण करना चाहता है ॥

भावार्थ—जैसे जल में पड़े हुवे चान्द के प्रतिबिम्ब को महा मूढ़ बालक पकड़ना चाहे वैसे मैं आप की स्तुति करने लगा हुं अर्थात् यहां आचार्य कहते हैं कि हे भगवन् जैसे पानी में पड़े चांद के प्रतिबिम्ब को पकड़ना असंभव है वैसे ही मेरी बुद्धि कर आपका स्तोत्र रचना असम्भव है, तो भी मैं शरम छोड़ कर आपका स्तोत्र रचने को उद्यमी हुआ हुं ॥

विबुधवंद्य प्रभु मैं मतिहीन । होय निलज स्तुति मनसा कीन ।
जल प्रतिबिम्ब बुद्धको गहे । शशिमण्डल बालक ही चहे ॥३॥

३—विबुध = देवता । निलज (निर्लज्ज) = बेशरम । जलप्रतिबिम्ब = पानी में पड़ा हुवा चान्द का प्रतिबिम्ब । शशिमण्डल = चान्द । बुद्ध = पण्डित । गहे = पकड़े । बालक = बच्चा (मूर्ख) । चहे = इच्छे है ॥

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशांक कांतान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पांतकालपवनोद्धतनक्रचक्रं,
कोवा तरीतुमलमंबुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

वक्तुं=कहने को गुणान=गुणों को। गुणसमुद्र=हे गुणों के सागर। शशांक =चांद। कांत=सुन्दर। कः=कौन। ते=तुम्हारे। क्षमः=समर्थ। सुरगुरु= बृहस्पति। प्रतिमा=समान। अपि=भी बुद्ध्या=बुद्धि से। कल्पांतकाल=प्रलयकाल पवन=वायु। उद्धत=उछाले। नक्र=मगरमच्छ। चक्र=समूह। कः=कौन। वा=अथवा। तरीतुं=तैरने को। अलं=समर्थ। अम्बुनिधि=समुद्र। भुजाभ्यां= भुजाओं से (हाथों से)।

अन्वयार्थ—हे गुणों के सागर! चान्द के समान मनोहर तेरे गुणों के कहने को बुद्धि से बृहस्पति के तुल्य भी कौन पण्डित समर्थ है। प्रलय काल की वायु से उछल रहे हैं नाकूओं के समूह जहां ऐसे समुद्र को भुजावों से कौन तैर सकता है।

भावार्थ—यहां आचार्य कहते हैं कि हे गुणों के सागर आप के गुण असंख्य हैं जब बृहस्पति सारखे बुद्धिमान् भी आप के गुण वर्णन करने में अशक्त हैं तब मेरी अल्पबुद्धि कर आपके गुणों का वर्णन करना हाथों से अगाध समुद्र के तरने के समान है॥

गुणसमुद्र तुम गुणअविकार। कहत न सुरगुरु पावे पार॥
प्रलय पवन उद्धत जलजन्त। जलधि तिरे को भुजबलवन्त॥४॥

४—गुणसमुद्र=गुणों का सागर। अविकार=विकार से रहित (शुद्ध)। सुरगुरु=बृहस्पति। पवन=वायु। उद्धत=उछलते। जलजन्त=जल के जीव। जलधि=समुद्र। भुज=बांह से। बलवन्त=बलवाला॥

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश,
कर्तुं स्तवं विगतशक्ति रपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्यमृगो मृगेन्द्रं,
नाऽभ्येति किंनिजशिशोःपरिपालनार्थम् ॥५॥

सोहम् = सो मैं । तथापि = तौ भी । तव = तुम्हारी । भक्तिवशात् = भक्ति के वश से । मुनीश = मुनीश्वर । कर्तुं = करणे को स्तव = स्तोत्र । विगत = दूर होगई । शक्ति = सामर्थ्य । अपि = प्रवृत्तः = तत्पर (मशगूल) प्रीत्या = प्रेम से । आत्म वीर्य = अपनी ताकत । अविचार्य = बिना बिचारे । मृगी = हिरनी। मृगेन्द्र = शेर । नाभ्येति = सन्मुख नहीं आती । किं = क्या । निजशिशोः = अपने बच्चे के । परिपालनार्थम् = बचाने के लिये ॥

अन्वयार्थ—तो भी हे मुनीश शक्ति हीन भी मैं तुम्हारी भक्ति के वश से स्तोत्र बनाने के लिये प्रवृत्त हुआ हूं ।

हिरणी प्रेम से अपनी ताकत को न विचार कर अपने बच्चे के बचाने क लिये शेर के सन्मुख क्या नहीं जाती ।

भवार्थ—जैसे हिरणी अपने में शेर के मुकाबले की ताकत न होते हुए भी अपने बच्चे की प्रीति के वश से शेर के सन्मुख जाती है वैसे ही मैं यह जानता भी हुं कि मेरे में आपके स्तोत्र बनाने को लियाकत नहीं है तो भी मैं हे अरहन्त भगवन् आप के प्रेम के वशीभूत हुआ आप का स्तोत्र बानने में तत्पर (मशगूल) हुआ हूं ॥

सो मैं शक्तिहीनस्तुतिकरूं । भक्तिभाव वश कुछ नहीं डरूं ॥
ज्यूं मृगी निज सुत पालन हेत । मृगपति सन्मुखजाय अचेत ॥५

५—शक्ति हीन = सामर्थ्य से रहित (कमजोर) । भाव = भावना । मृगी = हिरणी । निज = अपना । सुत = पुत्र । हेत = लिये । मृगपति = शेर । अचेत = बिना समझे ॥

अल्पश्रुतंश्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेवमुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चारुचाम्रकलिकानिकरैकहेतुः ॥ ६ ॥

अल्प = थोड़ा। श्रुत = शास्त्र। श्रुतवतां = पण्डितों को परिहास = हांसी। धाम = धाम। त्वद्भक्ति = तुम्हारी भक्ति। एव = ही। मुखरीकुरुते = वाचाल करती है। बलात् = जोर से। मां = मुझे। यत् = जैसे (जो) कोकिलः = कोयल। किल = निश्चय से। मधौ = वसन्त में। मधुर = मीठा वरौति = शब्द करता है। तत् = वह। चारु = मनोहर। आम्र = आम। कलिका = कली (मञ्जरी वा कोहर) निकर = समूह। एकहेतु = एक खास सबब।

अन्वयार्थ—हे प्रभो थोड़ा पढ़े हुवे और विद्वानों की हांसी के स्थान मुझ को आप की भक्ति जोरावरी से बहुत बोलने वाला करती है जो वसन्त ऋतु में कोयल मीठा गाती है उसमें मनोहर आम की मञ्जरी का समूह ही सबब है॥

भावार्थ—हे भगवन् जैसे वसन्त ऋतु में आम के कोर के प्रभाव से तृप्त हुई हुई कोयल मीठे मीठे शब्द करती है उसी तरह से मुझ कम इलम आलमों की हांसी के स्थान को आप की भक्ति जोर सोर से धारा प्रवाह अपकी स्तुति करने को मजबूर करती है॥

नोट—इस श्रीमानतुंगाचार्य रचित काव्य में किसी ने आम्र शब्द दूर कर उसकी जगह एक ऐसा लज्जा उपजाने वाला शब्द गूंथ दिया था जो स्त्री के उस पोशीदा अंग का नाम है जिस से पुत्र पुत्री जन्मते हैं देखो जैनस्तोत्र संग्रह पृष्ठ ४ छापा बम्बई सं० १९४७ वि० सो इस समय तक किसीने भी उस दोष के दूर करनेकी कोशिश नहीं की जब हमने प्रथम यह संस्कृत पाठ छापा तब यह त्रुटी दूरकरी थी॥

मैं शठ बुद्धि हसन को धाम। तुम मुझ भक्ति बुलावे राम॥
ज्यूंपिक अम्ब कली परभाव। मधऋतु मधुर करे आराव॥ ६ ॥

त्वत्संस्तवेन भवसंततिसन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रांतलोकमलिनीलमशेषमाशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमंधकारम्॥ ७॥

त्वत्संस्तवेन = तुम्हारे स्तोत्र से। भवसंतति = जन्म समूह। सन्निबद्धं = बन्धे हुये। पाप = गुनाह। क्षणात् = थोड़े वक्त में। क्षयं = नाश को। उपैति = प्राप्त होते हैं। शरीरभाजां = देहधारियों के। अक्रांतलोक = दुनियां में छारहा अलिनीलं = भ्रमरके समान नीला। अशेष = कुल। आशु = जल्दी। सूर्य = रवि। अंशु = किरण। भिन्नं = दूर किया। इव = तरह। शार्वर = रात का। अन्धकार = अन्धेरा॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो! जैसे जगत् को आक्रमण करणे वाला भौंरे के समान काली रात का तमाम अन्धेरा सूर्य की किरण से फटा हुआ तत्काल नष्ट होजाय है वैसे ही प्राणियों का जन्म जन्मान्तर से बंधा हुआ पाप कर्म आपके स्तोत से क्षण में नाश को प्राप्त होता है॥

भावार्थ—हे भगवन् जैसे जगत् में छाया हुआ भी अन्धकार सूर्य के प्रकाश से नष्ट होजाता है। वैसे ही आप का स्तोत्र पढने से अनेक जन्म के बांधे हुए पाप क्षण मात्र में जाते रहते हैं॥

तुम यश जंपत जन छिन माहिं। जन्म जन्म के पाप नसाहिं॥
ज्यूं रवि उदय फटे तत्काल। अलिवत् नील निशा तम जाल॥ ७॥

७—जंपत = जपना (उच्चारणा)। नसाहिं = नस जाते हैं। रवि = सूर्य। उदय = ऊगना॥

अलिवत् = भौंरे के समान। नील = नीला, काला। निशा = रात। तम-जाल = अन्धेरे का समूह॥

मत्वेति नाथ तव संस्तवनंमयेद,
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात्।
चेतोहरिष्यति सतां नलनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदविन्दुः ॥ ८ ॥

मत्वा=मानकर। इति=यह। नाथ=स्वामिन्। तव=तुम्हारा। संस्तवन=स्तोत्र। मया=मेरेसे। इदं=यह। आरभ्यते=शुरु किया गया है तनुधिया=कम बुद्धि से। अपि=भी। तव=तुम्हारे। प्रभाव=प्रताप। चेतो=दिलको। हरिष्यति=चुरालेगी। सतां=सज्जन। नलिनी=कमलिनी। दल=पत्र। मुक्ताफल=मोती। द्युति=कांति। उपैति=पाता है। ननु=निश्चय से। उदविन्दु=जलकी बून्द।

अन्वयार्थ—हे स्वामिन्! यह जान कर तुम्हारे प्रभाव से थोडी बुद्धि करके भी तुम्हारा स्तोत्र मेरे से शुरू किया जाता है सो यह स्तोत्र सज्जनों के चित्त को हरेगा। जल की बून्द कमलनी के पत्ते पर पड़ी हुई मोती की शोभा को धारती है।

भावार्थ—हे भगवन् जैसे कमल के पत्र पर पड़ी हुई पानी की बून्द मोती समान भासती है यही मानकर मैंने आपका स्तोत्र बनाना शुरू किया है॥

सो उमैद करता हूं कि मुझकम इलमसे किया हुआ यह आप का स्तोत्र (गुणानुवाद) सज्जनों के चित्त को हरेगा॥

तुमप्रभाव ते करूं विचार। होसी यह थुति जन मन हार॥
ज्यों जल कमल पत्र पै परे। मुक्ताफल की द्युति विस्तरे॥ ८॥

८—प्रभाव=प्रताप। होसी=होवेगी। मनहार=मन को हरने वाली। पत्र=पत्ता। परै=गिरे। मुक्ताफल=मोती द्युति=कान्ति॥

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं,
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हंति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभांजि ॥९॥

आस्तां =(दूर) रहो। तव =तुम्हारा। स्तवन =स्तोत्र। अस्त =नाश(दूर) होना। समस्त =सकल। दोष =गुनाह। त्वत् =तुम्हारी। संकथा =अच्छी कथा। अपि =भी। जगतां =संसार के। दुरित =पाप। हन्ति =नाश करती है। दूरे =दूरमें सहस्र किरण =सूरज। कुरुते =करता है। प्रभा =तेज। एव =ही। पद्माकर =सरोवर जलज =कमल। विकाशभांजि =खिलने वाले।

अन्वयार्थ—दूर कर दिये हैं सकल पाप जिसने ऐसा आपका स्तोत्र तो दूर रहो आपकी तो कथा ही पापों को दूर करती है सूरज तो दूर रहो सूरज की कांति ही सरोवरों में कमलों को खिलाने वाले कर देती है।

भावार्थ—हे भगवन् जैसे सूर्य तो बहुत दूर है सिरफ उसके उगने के पूर्व उस कर किये हुवे उजाले से प्रातःकाल कमल खिल जाते हैं तैसे ही आप का स्तोत्र तो एक बहुत बड़ी बात है केवल तुम्हारे नाम मात्र के उच्चारण से ही जीवों के पाप दूर होजाते हैं॥

तुम गुण महिमा हत दुःख दोष।
सो तो दूर रहो सुख पोष॥
पाप विनाशक है तुम नाम।
कमल विकासे ज्युं रविधाम॥९॥

९—महिमा =माहात्म्य (बड़ाई)। हत =नाश करनेवाली विकासे =खिलावे। रविधाम =सूरज का तेज॥

नात्यद्भुतं भुवन भूषण भूत नाथ,
भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टवंतः।
तुल्या भवंति भवतोननु तेनकिंवा,
भूत्याश्रितंयइहनात्मसमं करोति ॥ १० ॥

न = नहीं। अत्युद्भुतं = बड़ा आश्चर्य। भुवन = संसार भूषण = अलंकार (जेवर)। भूत = प्राणि। नाथ = स्वामी। भूत = सुन्दर। गुण = गुण। भुवि = जमीन पर। भवन्त = आपको। अभिष्टुवन्तः = स्तुति करते हुए। तुल्या = बरोबर भवन्ति = होते हैं। भवतः = तुम्हारे। ननु निश्चय से। तेन = उस करके। किं = क्या। वा = अथवा। भूति = विभूति। श्रितं = दास। यः = जो। इह = यहां। न नहीं। आत्मसम = अपने समान। करोति = करता है।

अन्वयार्थ—हे जगत् के भूषण भतों प्राणियों के स्वामिन् पृथ्वीमें सच्चे गुणों कर आपको स्तुति करते हुये भक्त यदि आप के तुल्य होजाते हैं तो इसमें क्या आश्चर्य है।

इस जगत् में जो अपने आश्रित को विभूति करके अपने समान नहीं करता उस से क्या।

भावार्थ—हे नाथ इस जगत में वही स्वामी श्रेष्ठ हैं जो अपने आश्रित को विभूति कर अपने समान कर देते हैं सो यदि आपको भजते भजते जो भक्त जीव, इस ही दुनियां में आप के समान होजाते हैं तो इस में क्या आश्चर्य है ॥

नहीं अचंभ जो होय तुरन्त।
तुम से तुम गुण वरणत सन्त।
जो आधीन, को आप समान।
करे न सो निन्दित धनवान् ।१०।

१०—अचंभ = अचंभा(आश्चर्य्य)। तुमसे = तुमजैसे आधीन = सेवक(भक्त) ॥

दृष्ट्वा भवंतमनिमेषविलोकनीयं,
नाऽन्यत्र तोषमुपयाति जनस्यचक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिंधोः,
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत्॥११॥

दृष्ट्वा=देख करके। भवन्तं=आपको। अनिमेष=बिना आंख के झमकने से। विलोकनीयं=देखने योग्य। न=नहीं। अन्यत्र=और जगह। तोष=आनन्द। उप-याति=पाती है। जनस्य=मनुष्यकी। चक्षुः=आंख पीत्वा=पी करके। पयः=दूध। शशि कर=चांद की किरण द्युति=कांति। दुग्धसिंधु=क्षीरसमुद्र। क्षारं=खारा। जल=पानी। जलनिधि=समुद्र। असितुं=पीने। को=कः=कौन। इच्छेत्=चाहे।

अन्वयार्थ—हे प्रभो न झमकने से। देखने योग्य आपको देख कर मनुष्य की आंख दूसरी जगह आनन्द को नहीं पाती। चन्द्रमाकी किरणों की शोभा के समान शोभावाले क्षीर समुद्र के दूध को पीकर दूसरे समुद्र के खारे पानी पीने को कौन चाहता है।

भावार्थ—हे भगवन् काल के भेदों में आंख झमकने मात्र वक्त (एकपलक) थोड़ासा समय है सो आप का यह देखने योग्य (दिलकश) स्वरूप नहीं झमकती है आंख जिस की (लगातार देखनेवाला) एक पलक तो क्या अगर जरा भी इन्सान की आंख देख लेवे तो फिर वह आपको देखती हुई पलकमात्र भी दर्शनाभाव नहीं सहती हुई लगातार आप को ही देखने की इच्छक किसी दूसरे को भी देखना पसंद नहीं करती क्योंकि क्षीर समुद्र के उज्जल दुग्ध को पीकर खारे समुद्र का जल कौन पीना चाहता है

नोट—अरहंतकी आंख कभी नहीं झमकती और देखने वालों की आंख भी उन को देख कर यही चाहती है कि मैं उन के स्वरूप को देखे जाऊं झमकुं नहीं॥

इकटक जन तुम को अविलोय। और विषे रति करे न सोय॥
को कर क्षीरजलधि जल पान। क्षार नीर पीवे मति मान॥

यैःशांतरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत।
तावंत एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति॥ १२॥

यैः=जिन्हों करके। शांतराग=जाता रहा है राग जिनका। रुचि=इच्छा। परमाणु=पुद्गलका सबसे छोटा हिस्सा (जर्रा)। त्वं आप निर्मापित=बनायागया। त्रि=तीन। भुवन=जगत्। एक=अकेला। ललामभूत=भूषणरूप। तावन्तः=उतने एव=ही। खलु=निश्चयसे। ते=वे। अपि=भी। अणवः (परमाणु)। पृथिवी=जमीन। यत्=जिससे। ते=तुम्हारे। समान=तुल्य। अपर=दूसरा। नहीं=नहीं। रूपं=रूप। अस्ति=है॥

अन्वयार्थ—हे भगवन् तीन भुवनों के भूषण रूप तुम, शांत होगये हैं राग (मोह) अथवा (रंग) और रुचि=ख्वाहिश जिनके ऐसे जिनपरमाणुवों से आप बनाए गए हो वह परमाणु उतने ही थे जिससे कि तुम्हारे समान दूसरा रूप पृथ्वी में नहीं है॥

भावार्थ—हे भगवन् आप तीनलोक के भूषण हो जिन शांतराग इच्छा रहित परमाणुवों से आप का शरीर बना है वह जगत् में उतने ही थे यही कारण है कि आप जैसा रूप और किसी दूसरे का नही है।

तुम प्रभु वीतराग गुण लीन।
जिन परमाणु देह तुम कीन॥
हैं जितने ही ते परमान।
यातें तुम सम रूप न आन॥१२॥

१२—परमाणु=सब से छोटा जर्रा। आन=और, दूसरा॥

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि,
निश्शेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवतिपाण्डुपलाशकल्पम्॥ १३॥

वक्त्रं—मुख। क्व = कहां। ते—तुम्हारा। सुर = देवता। नर = मनुष्य। उरग = सांप। नेत्र = आंख। हारि मनोहर। निश्शेष = सकल। निर्जित = जीतलिया। जगत्त्रितय = तीन लोक। उपमान = उपमा। बिंब = प्रतिबिम्ब। कलंक मलिन = कलंक से मैला। क्व = कहां। निशाकर = चांद। यत् = जो। वासर = दिन। भवति = होता है। पांडु = पीला पलाश = पत्ता। कल्प = समान॥

अन्वयार्थ—हे भगवन् देवता, मनुष्य, और सर्पों के नेत्रों को हरणे वाला, और जीत लीनी हैं तीन जगत् की उपमायें जिस ने ऐसा आपका मुख कहां और वह कलंक से मैला चांद का प्रतिबिंब कहां जोकि दिन में पीले पत्ते के समान होजाता है।

भावार्थ—हे भगवन् आपके रूप की सुन्दरता ने जितने देव मनुष्य और सर्पादि तिर्यञ्च हैं सर्व के नेत्र और मन हर लिये हैं हम कवि लोग सब से बढ़ कर चांद की उपमा अच्छी मानते हैं परंतु यदि हम उस की उपमा भी आपके मुख को देवें तो पूर्णमाशि का पूरा चांद भी कलंकित भासता है और दिन में पीले पत्ते की तरह चमक रहित होजाता है आपका मुख निकलंक सदा दैदीप्यमान है सो चांद को भी जीतने वाला है पस तीन लोक में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिस की उपमा आपके मुख को देसक इसलिये आपका मुख अनुपम है।

नोट—पलाशशब्द का अर्थ ढाकाभी है पत्र भी है सो पांडुपलाश का अर्थ पीतपत्र होना चाहिये सोई हमने ठीक कर दिया है।

कहां तुमसुख अनुपम अविकार।
सुर नर नाग नयन मनहार॥
कहां चन्द्र मण्डल सकलंक।
दिन में पीत पत्र सम रंक॥ १३॥

संपूर्णमंडलशशांककलाकलाप,
शुभ्रागुणास्त्रिभुवनंतवलंघयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

संपूर्ण = पूरा । मण्डल = प्रतिबिम्ब । शशांक = चांद । कला = सोलहमा हिस्सा । कलाप् = समूह । शुभ्रा = सफेद । गुण = गुण । त्रिभुवन = त्रिलोकी । तव = तुम्हारे । लंघयन्ति = उल्लंघ जाते हैं । ये = जो । संश्रिताः = आश्रयसे हैं । त्रिजगदीश्वर = तीनलोकके नाथ । नाथ = स्वामी । एक = एक कः = कौन । तान = उनको । निवारयति = निवारता है (हटाता है) । संचरतः = विचार रहे । यथेष्टं = अपनी इच्छा से ।

अन्वयार्थ—हे भगवन् ! सम्पूर्ण मण्डल वाले चान्द की किरणों के समूह के समान सफैद आपके गुण त्रिलोकी को उल्लंघ जाते हैं । जो गुण तीन जगत् के एक स्वामी को आश्रय करते हैं इच्छा से विचरते हुए उनको कौन निवारण कर सकता है ॥

भावार्थ—हे तीन लोक के नाथ तीन लोक में जितने गुण हैं सर्व ने अपनी इच्छा से विचरते हुए आपका आश्रय लिया है अर्थात् वह सर्व आपमें आतिष्ठे हैं सो आप के गुण पूर्ण चन्द्रमा के मंडल की किरणो के समूह के समान उज्जल तीन लोक को भी उलंघ कर सर्व लोकाकाश में व्याप्त हो रहे हैं उनको कोई भी हटा नहीं सकता अर्थात् चन्द्रमा की उज्जलता और गुण तो सिरफ इस ही लोक में फैलते हैं और दिन में सूर्य की किरणो से प्रकाशमान नहीं रहते और आपके गुण तीन लोक को भी उलंघन कर सर्वत्र व्याप्त रहे हैं जिन को कोई भी हटा नहीं सक्ता ॥

पूर्ण चन्द्र ज्योति छविवन्त । तुम गुण तीन जगत् लंघंत ॥
एक नाथ त्रिभुवन आधार । तिन विचरत को सकै निवार ॥१४

१४—छवि = शोभा । लंघंत = पारजाना । नाथ स्वामी आधार = आश्रय । निवार = हटाना ॥

चित्रंकिमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि,
नीतं मनागपिमनो न विकारमार्गम्।
कल्पांतकालमरुता चलिताचलेन,
किँ मंदराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥

चित्र = आश्चर्य। किं = क्या। अत्र = यहां। यदि = जेकर। ते = तुम्हारा। त्रिदश = देवता। अंगना = स्त्री। नीतं = लिजाया गया। मनाक् = थोड़ासा। अपि = भी। मनः—दिल। न—नहीं। विकारमार्ग = विकार का रास्ता। कल्पान्तकाल = प्रलयकाल। मरुत्—पवन(हवा)। चलता चल—हिला दिये हैं पहाड़ जिसने। किं = क्या। मन्दराद्रि = मन्दिराचल पहाड़ (मेरू)। शिखर = चोटी। चलितं = हिलता है। कदाचित् = कभी भी॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो यदि (अगर) अप्सराओं से आपका मन थोड़े से विकार-मार्ग (काम विकार) पर नहीं लाया गया तो इस में आश्चर्य ही क्या है॥
- हिलादिये हैं पहाड़ जिसने ऐसे प्रलय काल की वायु करके क्या कभी मन्दिराचल (मेरू) पहाड़ की चोटी हिल जाती है (कभी नहीं)॥

भावार्थ—हे स्वामिन् जैसे प्रलय की वायु सभी पहाड़ों को हिलाती है परन्तु मेरू को नहीं हिला सकती तैसे ही इन्द्रादिकों के भी मन को विकार उपजाने वाली अप्सरा यदि आप के मनको नहीं हिला सकी तो इस में कोई आश्चर्य नहीं है। क्योंकि आप का मन निष्कम्प है उसे कोई भी कम्पायमान नहीं कर सक्ता॥

जो सुरतिय विभ्रम आरम्भ।
मन न डिगो तुम सो न अचंभ॥
अचल चलावे प्रलय समीर।
मेरु शिखर डिगमगे न धीर॥१५

१५—सुरतिय = देवांगना। विभ्रम = विलास (क्रीडा) अचंभ = आश्चर्य। अचल = पहाड़। समीर = वायु॥

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥१६

निर्धूम=धूवें से रहित। वर्ति=(बत्ती) अपवर्जित=रहित। तैलपूर=तेल का प्रवाह। कृत्स्नं=सकल (तमाम)। जगत्त्रय=त्रिलोकी। इदं=यह। प्रकटीकरोषि=प्रकाश करते हो। गम्यः=प्राप्त। न—नहीं। जातु=कभी भी मरुत्=हवा। चलताचलानां=हिलादिये हैं पहाड़ जिन्होंने, दीप=दीवा। अपर=दूसरा। त्वं=तुम। असि=हो। नाथ=स्वामिन्। जगत् प्रकाशः=जगत् को प्रकाश ने वाला।

अन्वयार्थ—हे भगवन् धूवां बत्ती तेल इनसे रहित सकल इस त्रिलोकी को प्रकाश (प्रकट) करता हुवा पर्वतों के हिलाने वाली भी वायु से कभी न हिलने वाला जगत् का प्रकाशक तू एक दूसरा दीवा है॥

भावार्थ—हे प्रभो! दीपक अल्प देशका प्रकाशक और आप त्रिलोकी के प्रकाशक दीपक धूवां तेल और बाती वाला अर्थात् तेलबत्ती के आश्रय है और धूवां सहित है और हवादिक से हिलचल या आभाव को प्राप्त हो जाता है और आप इन से रहित सदा देदीप्यमान रहने वाले विलक्षण दीपक हैं॥

धूम रहित बाती गति नेह।
परकाशक त्रिभुवन घर येह॥
बात गम्य नाहीं परचण्ड।
अपर दीप तुम बले अखण्ड॥१६॥

१६—धूम=धूवां। बाती=बत्ती। गति=हिलना। नेह=नहीं। बात=हवा। गम्य=पहुंचना। अपर=दूसरा दीप=दीवा॥

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसायुगपज्जगन्ति।
नांभोधरो दरनिरुद्धमहाप्रभावः,
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनींद्रलोके ॥१७॥

न = नहीं। अस्त = डूबजाना। कदाचित् = कभी भी। उपयासि = जाता है। न = नहीं। राहुगम्यः = राहु करके ग्रास किया गया। स्पष्टी करोषि = जाहिर करता है। सहसा = शीघ्र ही। युगपत् = एकदम। जगन्ति = तीन लोक। न = नहीं। अम्भोधर = बादल। उदर—पेट (मध्य)। निरुद्ध = रुका। महा = बड़ा। प्रभाव = प्रताप। सूर्य = रवि। अति शायि = जियादा। महिमा = महात्म्य। असि—हैं। मुनीन्द्र = मुनीश्वर। लोके = संसार में ॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो! तू न कभी अस्त होता है न राहु से ग्रास किया जाता है और शीघ्र तीनलोकों को एक दम प्रकाश करता है तथा नहीं रुका बादलों के बीच बड़ा प्रभाव जिसका सो ऐसा तू संसार में सूरज से अतिशय महिमा युक्त है।

भावार्थ—हे भगवन् यदि आपको मैं सूर्य की उपमा दूं तो सूर्य संध्याकाल अस्त होजाय है अमावस के दिन ग्रहण में राहु से ग्रसा भी जाय और जगत् को क्रम से प्रकाशे है तथा बादलों के बीच भी आजाय सो आप में यह दोष कोई भी नहीं है आप सर्व दोष रहित निर्विघ्न निरंतर सदा काल तीन लोक को प्रकाशे हैं इसलिये आप निरुपम कहिये उपमा रहित महान् तेजस्वी सूर्य हैं ॥

छिप हो न लिपो राहु की छांहिं।
जग प्रकाशक हो छिन मांहि ॥
घन अनवर्त्त दाह विनिवार।
रवितें अधिक धरो गुणसार ॥ १७ ॥

१७—लिपो = ढका जाना। घन अनवर्त = बादल से न ढका जाना। दाह = गरमी। विनिवार = हटाना। रवि = सूर्य्य।

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति,
विद्योत यज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ॥१८॥

नित्योदय = सर्वकाल में ऊगा । दलित = दला गया । मोह = अज्ञान । महान्धकार = बड़ा भारी अन्धेरा । गम्य = प्राप्त होने योग्य । न = नहीं । राहुवदन = राहु का मुख । न = नहीं । वारिद = बादल । विभ्राजते । शोभता है । तव = तुम्हारा । मुखाब्ज = मुखरूपकमल । अनल्प = बहुत कांति = शोभा । विद्योत = प्रकाश । जगत् = विश्व । अपूर्व = नया । शशांकबिम्ब = चन्द्रमण्डल ॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो ! सदा उगा हुआ नाश कर दिया है मोहरूप महान् अन्धकार जिसने राहु के मुख में न आने वाला, न बादलों से ढका जाने वाला तथा बड़ी शोभा वाला आपका मुख रूप कमल जगत् को प्रकाशता हुआ एक नया चन्द्र मण्डल है ॥

भावार्थ—चांद कृष्ण पक्ष में क्षीण होय तथा शुक्ल में बढ़े और पूर्णमासी को राहु से ग्रसा जाय । और आपके मुख में यह कोई भी दोष नहीं सो आपका मुख एक विलक्षण चन्द्रमा है । अर्थात् किसी काल में भी नहीं मंद होय है ज्योति जिस की ऐसे आप जगत् को प्रकाश करने वाले एक अद्भुत जाति के चन्द्रमा है ॥

सदा उदित विदलित तम मोह ।
विघटतमेघ राहु अविरोह ॥
तुम मुख कलम अपूर्व चन्द ।
जगत् विकाशी ज्योति अमन्द ॥१८॥

१८—तम = अंधेरा । मोह = अज्ञान । विघटित = अलग । अविरोह = ढका जाना । अपूर्व चन्द्र = नया चान्द । विकाशी = प्रकाशने वाला । अमंद = अखंड ।

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु दलितेषु तमस्सु नाथ।
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥१९॥

किं = क्या। शर्वरी = रात। शशिना = चांद से। अह्नि = दिन में। विवस्वान = सूर्य। वा = अथवा। युष्मद् = आपके। मुखेन्दु = मुखरूप चांद। दलित = दले गये तमः = अन्धेरा। नाथ = स्वामिन्। निष्पन्न = पैदा हुए। शालिवन = चावलों के खेत शाली = शोभने वाले। जीव लोक = मनुष्यलोक। कार्यं = काम। कियत् = कितना। जलधर = मेघ। जलभार = पानी का भार। नम्र = नीचे हुवे।

अन्वयार्थ—हे स्वामिन्! आपके मुखरूप चांद से अन्धेरे के नष्ट होजाने पर रात में चांद से और दिन में सूर्य से क्या प्रयोजन है जब जगत् पके हुए धानों के समूहसे शोभता है तब जलभार से नीचे हो रहे जो मेघ हैं उनसे क्या फ़ायदा है॥

भावार्थ—हे भगवन् जैसे चावलों के खेत पक जाने पर सजल मेघ का झुक कर आना अकारथ है वैसे ही जब रात के अन्धेरे को चांद दूर करता है और दिन में सूर्य अन्धेरे को दूर करता है सो यदि दोनों वक्तों के अंधेरे को तुम्हारे मुखरूपी चंद्रमा ने दूर करदिया तो तब इन की क्या ज़रूरत है॥

निश दिन शशि रवि को नहिं काम।
तुम मुख चन्द हरे तम धाम॥
जो स्वभाव से उपजे नाज।
सजल मेघ तो कौन हु काज॥ १९॥

१९—तम = अन्धेरा। सजल मेघ = पानी वाला बादल।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्वं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

ज्ञानं = ज्ञान। यथा = जैसे। त्वयि = आप में। विभाति = शोभता है। कृत = किया गया। अवकाश = जगह। न = नहीं। एवं = ऐसे। तथा = तैसे। हरि = विष्णु। हर = शिव। नायक = मालिक। तेजः = तेज। स्फुरन् = चमकीली। मणि = रत्न। याति = पाता है। यथा = जैसे। महत्व = बड़ाई। न = नहीं। एवं = ऐसे। काच = कच्च। शकल = टुकड़ा। किरण = किरण। आकुल = व्याप्त। अपि = भी॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र कृतावकाश ज्ञान जैसे आप में प्रकाशता है वैसे हरि हरादिक देवों में नहीं जैसे प्रकाशमान मणियों में तेज महत्व को प्राप्त होता है वैसे किरणों से व्याप्त काच के खण्ड में नहीं प्राप्त होता॥

भावार्थ—हे भगवन् जैसे जितनी चमक रत्नों में होती है उतनी कांच के टुकड़ों में नहीं होती वैसे ही जैसा अखण्डित ज्ञान आप में देदीप्यमान है वैसा हरि हरादिक देवों में नहीं है॥

जो सुबोध सोहे तुम माहिं।
हरिहरादिक में सो नाहिं॥
जों द्युति महारत्न में होय।
काच खंड पावे नहिं सोय॥ २०॥

२०—सुबोध = सुज्ञान।

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनोहरति नाथ भवांतरेपि ॥२१॥

मन्ये = मानता हूं । वरं = बहुत अच्छा । हरिहरादयः = हरिहरादिक । एव = ही । दृष्टा = देखे गए । दृष्टेषु = देखे हुए । येषु = जिनके । त्वयि = तेरे में । तोष = खुशी । एति = प्राप्त होती है । किं = क्या । वीक्षितेन = देखे हुवे करके । भवता = आप करके । भुवि = पृथ्वी में । येन = जिस से । न = नहीं । अन्यः = दूसरा । कश्चित् = कोई । मन = दिल । हरति = चुराता है । नाथ = स्वामिन् । भवान्तर = दूसरा जन्म । अपि = भी ॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो ! बहुत अच्छा हुआ कि हरिहरादिक मेरे कूर देखे गये जिनके देखे जाने पर दिल आप विषे संतोष को प्राप्त हुआ भूमि पर आपके देखने से दूसरा कोई जन्मान्तर में भी मन को हरण नहीं कर सकता ॥

भावार्थ—हे भगवन् ! मेरे वास्ते यह बड़ी खुशी की बात है कि मैंने हरिहरादिक दूसरे देव भी देख लिये क्योंकि उनके देखने से आपको वीतराग रूप पहिचान मेरा दिल आप विषे ही संतोष को प्राप्त हुआ अब किसी जन्मान्तर में भी मेरे मन को दूसरा कोई हरण नहीं कर सकता ॥

नाराच छन्द ।

सरागदेव देख मैं भला विशेष मानिया ।
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया ।
कछू न तोहि देख के जहां तुही विशेषिया ।
मनोज्ञ चित्त चोर और भूल हू न पेखिया ॥२१॥

२१—सराग = राग सहित । विशेषिया = जिआदा । पेखिया = देखा ।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

स्त्री=औरत। शत=सौ (१००)। शतशः=सैंकड़ों। जनयन्ति=पैदा करती हैं। पुत्रान्=बच्चों को। न=नहीं। अन्या=दूसरी। सुत=पुत्र। त्वदुपम=तेरे समान। जननी=माता। प्रसूता=पैदा करती। सर्वा=सभी। दिशा=दिशा। दधति=धारण करती हैं। भानि=तारावों को। सहस्ररश्मि=सूर्य। प्राची=पूर्व दिशा। एव=ही। दिक्=दिशा। जनयति=पैदा करती है। स्फरत्=प्रकाशमान अंशु=किरणें। जाल=समूह॥

अन्वयार्थ—हे भगवन् सैंकड़ों स्त्रियें सैंकड़ों पुत्रों को जनती हैं परन्तु दूसरी माता ने तुम्हारे समान पुत्र पैदा नहीं किया। सभी दिशायें तारों को धारण करती हैं। लेकिन प्रकाशमान होरही हैं किरणें जिसकी ऐसे सूर्य को तो पूर्वदिशा ही पैदा करती है॥

भावार्थ—हे भगवन् जैसे तारों को तो हरएक दिशा धारण करती हैं परन्तु सूर्य्य को तो पूर्व दिशा ही उदय करती है इसी प्रकार अनेक माता अनेक पुत्र जन्मती हैं परन्तु तुम्हारे समान पुत्र सिवाय आपकी माता के किसी दूसरी माता के उत्पन्न नहीं होता॥

अनेक पुत्रवन्तनी नितम्बनी सुपूत हैं।
न तो समान पुत्र और मात ते प्रसूत हैं॥
दिशा धरन्ततारका अनेक कोटिको गिने।
दिनेश तेजवन्त एक पूर्वही दिशा जने॥२२॥

२२—नितंबनी=स्त्री। प्रसूत=पैदा करना। धरंत=धरती है। तारका=तारे। दिनेश=सूर्य।

त्वामामनंति मुनयः परमं पुमांस,

मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात्।

त्वामेव सम्मगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,

नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पंथाः॥२३॥

त्वां=तुझे। आमनन्ति=मानते हैं। मुनि=मुनि। परम=प्रकृष्ट शक्ति वाले। पुमान्=पुरुष। आदित्य=सूर्य। वर्ण=रंग। अमल=शुद्ध। तमसः=अन्धेरे से। पुरस्तात=आगे। त्वां=तुझे। एव=ही। सम्यक्=अच्छी भांति उपलभ्य=मालूम करके। जयन्ति=जीतते हैं। मृत्यु=मौत। न=नहीं। अन्यः=दूसरा। शिव=कल्याण रूप। शिवपद=मुक्ति। मुनीन्द्र=मुनीश्वर। पंथा=रास्ता॥

अन्वयार्थ—हे मुनीन्द्र मुनि तुझे परम पुरुष अन्धेरे के आगे सूर्य के तुल्य 'प्रभाव' वाले शुद्ध मानते हैं और मनुष्य आपको भली प्रकार जानकर मृत्यु को जीतते हैं और मुक्ति जाने के लिये और कोई दूसरा रास्ता नहीं है॥

भावार्थ—हे मुनीन्द्र मुनिजन आप को महान् पुरुष कर्म्म रूपी अंधेरे के आगे सूर्य समान शुद्ध वरण मानते हैं और आपको भले प्रकार जान कर मृत्यु को जीतते हैं अर्थात् सिद्ध पद को प्राप्त होते हैं क्योंकि सिवाय आपके मुक्ति जाने का और कोई दूसरा रास्ता नहीं है॥ २३॥

पुराण हो पुमान हो पुनीत पुण्यवान् हो॥
कहैं मुनीश अन्धकार नाश को सुभान हो।
महन्त तोहि जान के न होय वश काल के।
न और मोक्ष मोक्ष पन्थ देव तोहि टालके॥२३॥

२३—पुराण=पुराणा। पुमान=पुरुष। भानु=सूर्य॥

त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं,

ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंगकेतुम् ।

योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,

ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदंति संतः ।२४।

त्वां—तुझे । अव्यय=अविनाशी । विभु=व्यापक । अचिन्त्य=जिस का चिंतन न हो । असंख्य=अनगिणन । आद्य=आदिका । ब्रह्मन्=ब्रह्मा जी । ईश्वर=परमेश्वर । अनन्त=जिस का अन्त नहीं । अनङ्गकेतु=महादेव । योगीश्वर=योगिराज । विदितयोग=जाना है योग जिसने । अनेक=अनेक रूप । एक=अद्वितीय । ज्ञानस्वरूप=ज्ञान (बोधरूप) । अमल=शुद्ध । प्रवदन्ति=कहते हैं । संतः=सन्त (सज्जन) ॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो संत जन तुझे अविनाशी व्यापक, अचिंत्य असंख्य आद्य ब्रह्मा ईश्वर अनन्त विष्णु काम शत्रु (शिव) योगीश्वर योग के जानने वाले अनेक एक ज्ञान रूप अमल (शुद्ध) कहते हैं ॥

भावार्थ—हे प्रभो संतजन तुझे अविनाशी सर्व व्यापक अचिंत्य असंख्य आद्य (पहिला) ब्रह्मा ईश्वर, अनंत अनंगकेतु शिव योगीश्वर विदितयोग अनेक ज्ञान स्वरूप शुद्ध कहते हैं ॥

अनन्त नित्य चित्तकी अगम्यरम्य आदि हो ।
असंख्य सर्वव्याप ब्रह्मविष्णु हो अनादि हो ॥
महेश काम केतु योग ईश योग ज्ञान हो ।
अनेक एक ज्ञान रूप शुद्ध सन्त मान हो ॥२४॥

२४—रम्य=मनोहर ॥

बुद्ध स्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधात्,
त्वं शंकरोसि भुवनत्रयशंकरत्वात्।
धातासि धीरशिवमार्गविधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

बुद्ध=बुद्ध(ज्ञानी)। त्वं=तू। एव=ही। विबुध=देवता। अर्चित=पूजित। बुद्धि बोध=बुद्धि का बोध (प्रकाश)। त्वं=तू। शंकरः=शिव। असि=है। भुवन त्रय=तीनलोक। शंकर=मंगलकर्ता। धाता=ब्रह्मा। धीर धीरजवाला। शिवमार्ग=मुक्ति का रास्ता। विधि=तरीका। विधान=बनाना। व्यक्तं=साफ। त्वमेव=तुही। भगवन्=ऐश्वर्य वाला। पुरुष=मनुष्य। श्रेष्ठ। पुरुषोत्तम=विष्णु। असि=है॥

अन्वयार्थ—हे देवतावों से पूजित बुद्धि को बोध करने से तुही बुद्ध है तीन भुवनों को कल्याण करणे से तू शंकर है। हे धीर मोक्षमार्ग की विधि (तरीके) के विधान से तू (ब्रह्मा) है। हे भगवन् तूही स्पष्ट पुरुषोत्तम है॥

भावार्थ—हे धीर देवतावों कर पूजित तू बुद्धि का बोधन करने से बुद्ध है तीन लोक के मंगल करता होने से तुही शंकर है और मोक्षमार्ग की विधिका करने वाला होने से तुही विधाता है। और तुही पुरुषोत्तम कहिये नरों में उत्तम (श्रेष्ठ)है॥

तुही जिनेश बुद्ध हो सुबुद्धि के प्रमान से।
तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रयीविधान से॥
तुही विधात है सही सुमोक्षपन्थधार से।
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थ के विचार से॥ २५॥

२५—जगत्त्रयी=तीनजगत्। विधाता=रचने वाला।

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहरायनाथ,
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय। २६।

तुभ्यं = आप के ताईं। नमः = नमस्कार हो। त्रिभुवन = त्रिलोकी। आर्ति = पीड़ा। हर = हरणेवाले। नाथ = स्वामिन्। तुभ्यं = तुझे। नमः = प्रणाम हो। क्षिति-तल = पृथ्वी तल (भूतल)। अमल = शुद्ध। भूषण = जेवर। तुभ्यं = आपके ताईं। नमः = प्रणाम। त्रिजगत् = त्रिलोकी। परमेश्वर = स्वामी। तुभ्यं = आपको। नमः = नमन हो। जिन = जिन। भवोदधि = संसाररूप समुद्र। शोषण = सुकाने वाले॥

अन्वयार्थ—हे जिन तीन भवनों के दुःख दूर करने वाले आप को नमस्कार हो। हे पृथ्वी में शुद्ध भूषण रूप आप को नमस्कार हो। हे तीन जगत् के परमेश्वर आप को नमस्कार हो। हे संसार समुद्र के सुकाने वाले आप के ताईं नमस्कारहो॥

भावार्थ—इस श्लोक में श्रीमानतुंग आचार्य ने भगवान् के भिन्न भिन्न गुण वरणन कर बारंबार नमस्कार करी है॥

नमों करूं जिनेश तोहि आपदा निवार हो।
नमों करूं सुभूरि भूमि लोक के सिङ्गार हो॥
नमों करूं भवाब्धि नीर रास शोष हेत हो।
नमों करूं महेश तोहि मोक्ष पन्थ देत हो॥ २६॥

२६—आपदा = दुःख। भूरि = बहुत। भवाब्धि = संसार समुद्र। नीर रास = पानी का समूह। महेश = शिव।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश।
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि॥२७

कः=कौन। विसमय=आश्चर्य। अत्र=यहां। यदि=अगर। नाम=प्रसिद्ध गुणै=गुणोंकर। अशेष=सकल। त्वं=तू। संश्रितः=आश्रयकिया। निरवकाशतया=किसी जगह के न मिलने से मुनीश=मुनीन्द्र। दोष=दोष। उपात्त=पाया। विविध=अनेक प्रकार के। आश्रय=आसरा। जात=हुवा। गर्व=अहंकार। स्वप्नांतर=सुपने में। अपि=भी। न=नहीं। कदाचिदपि=कभी भी। ईक्षितः=देखा गया। असि=है॥ २७॥

अन्वयार्थ—हे मुनीश यदि समस्त गुणों ने निरवकाश होने से तू आश्रय किया हैं तो इस में क्या आश्चर्य है। मिल गए हैं अनेक आश्रय जिन को इस लिये उत्पन्न हुवा है अहंकार जिनहें ऐसे दोषों से स्वप्न में भी कभी नहीं देखा गया॥

भावार्थ—हे भगवन् जब समस्त गुणों को कोई और जगह नहीं मिली तब उन्हों ने आपका आश्रय लियाहै सो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है पानी तो नीवाण की तरफ ही आवेगा सो गुण तो गुणी के आश्रय ही ठहरेंगे और चूंकि दोषों को हर जगह आसरा मिल गया है इस लिये उन्होंने कभी स्वप्नमें भी आपको नहीं देखा अर्थात् आप में सर्व गुण ही गुण हैं, दोष कोई भी नहीं है॥

॥ १५ मात्रा चौपाई॥

तुम जिनवर पूरण गुण भरे।
दोष गर्व कर तुम पर हरे॥
और देवगण आश्रय पाय।
सुपन न देखे तुम फिर आय॥ २७॥

२७—गर्व=अहंकार। परहर=त्यागना।

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख,
माभाति रूपममलं भवतो नितांतम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥ २८ ॥

उच्चैः = ऊंचा । अशोकतरु = अशोकवृक्ष । संश्रित = आश्रयकिया । उन्मयूख = ऊंची किरणों वाला । आभाति = शोभता हे । रूप = रंग । अमल = शुद्ध । भवतः = आपका । नितांत = बहुत । स्पष्ट = साफ । उल्लसत् = चमक रही । किरण = किरणें । अस्त = नाशकिया । तमोवितान = अन्धेरा रूप चन्दोवा । बिम्ब = प्रतिबिम्ब । रवेः = सूर्य का इव = जैसे । पयोधर = मेघ । पार्श्ववर्ती = पास होने वाला ॥

अन्वयार्थ—हे स्वामिन् जैसे स्पष्ट प्रकाशमान किरणों वाला अन्धकार के समूह को दूर करने वाला और बादल के पास होने वाला सूर्य का प्रतिबिंब (मण्डल) हो वैसे ऊंचे अशोक तरु के पास, ऊंची किरणो व ला शुद्ध आपका रूप । निरन्तर शोभता है ॥

भावार्थ—बादल भी नीला होय है और अशोक वृक्ष भी नीला होता है । सो जैसे बादलों के पास ऊंचा सूर्य शोभता है वैसे ही हे भगवन् आप भी ऊंचे अशोक वृक्ष के पास शोभते हो ॥

तरु अशोक तल किरण उदार ।
तुम तन शोभित है अविकार ॥
मेघ निकट ज्यूं तेज फुरन्त ।
दिन कर दिपे तिमिर निहन्त ॥ २८ ॥

२८—तल = नीचे । दिनकर = सूर्य । निहंत = नाश ॥

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं,
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः॥२९॥

सिंहासनं = चौकी। मणिमयूख = मणिमोंकी किरणें। शिखा = ज्वाला। विचित्र = कई रंगका। विभ्राजते = शोभता है। तव = तुम्हारा। वपु = शरीर। कनक = सोना अवदात = शुद्ध। बिंब = प्रतिबिंब। वियत् = आकाश। विलसंत् = शोभमान। अंशुलता = किरण रूपीलता। वितान = विस्तार। तुंग = ऊंचा। उदयाद्रि = उदयाचल। शिरः = चोटी। इव = जैसे सहस्ररश्मिः = सूर्य॥

अन्वयार्थ—ऊंची उदयाचल पहाड़ की चोटी पर आकाश में चमक रहा है किरण रूप लतावों का समूह जिसका ऐसा सूर्य का मण्डल जैसे शोभे है वैसे मणियों की किरणों के तेज (ज्वाला) से अनेक वर्ण के सिंहासन पर सोने के समान शुद्ध तेरा शरीर शोभता है॥

भावार्थ—हे भगवन् जैसे उदयाचल पर्वत पर सूर्य शोभता है वसे ही अनेक प्रकार के रत्नोंकर जड़ितसिंहासन पर आपका स्वर्ण समान पीतवर्ण शरीर शोभता है अर्थात् यहां आचार्य ने स्वर्ण के सिंहासन पर तिष्टते हुये भगवान् को उदयाचल की चोटी पर आरूढ़ सूर्य की उपमा दी है॥

सिंहासन मणि किरण विचित्र।
तिस पर कंचन वरण पवित्र॥
तुम तन शोभित किरण विथार।
ज्यों उदयाचल रवि तम हार॥ २९॥

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकांतम् ।
उद्यच्छशांकशुचिनिर्झरवारिधार,
मुच्चैस्तटंसुरगिरेरिवशातकौंभम् ।२०।

कुन्द = कुन्दलफूल । अवदात = सफेद । चल = चंचल । चामर = चंवर । चारु = मनोहर । शोभ = शोभा । विभ्राजते = शोभता है । तव = तुम्हारा । वपु = शरीर कलधौत = सौना । कांत = सुन्दर । उद्यत् = ऊगा हुआ । शशांक = चांद, शुचि = शुद्ध निर्झर = झरणा । वारि = पानी । धार = धारा । ऊच्चै = ऊंचा । तटं = किनारा । सुरगिर = सुमेरु । इव = जैसे । शातकौम्भ = सौने का ॥

अन्वयार्थ—हे भगवन् उदय हो रहे चांद के समान शुद्ध निर्झर (झरणों) की जलधारों वाला सोने के ऊंचे सुमेरु के तट (किनारे) की तरह कुन्द के फूल के तुल्य सफैद हिलते चंवरों से मनोहर शोभावाला सोने के समान सुन्दर आपका शरीर अत्यन्त शोभित हो रहा है ॥

भावार्थ—हे भगवन् जैसे सुफैद जलके झरणों कर सहित स्वर्ण मय सुमेरु पर्वत शोभे है ऐसे ही कुन्द के पुष्पों के समान सुफैद चंवरों के ढुलन सहित आप का पीतवर्ण शरीर शोभे हैं ॥

कुन्द पहुप सित चमर ढुलंत ।
कनक वरण तुम तन शोभंत ॥
ज्यों सुमेरु तट निर्मल कांति ॥
झरणा झरैं नीर उमगांति ॥ २० ॥

छत्रत्रयं तव विभाति शशांक कांत,

मुच्चैः स्थितं स्थगितभानु करप्रतापम्।

मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं।

प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ।३१।

छत्रत्रयं = तीनछत्र। तव = तुम्हारे। विभाति = शोमते हैं। शशांक = चांद। कांत = सुन्दर। उच्चैः = ऊंचा। स्थित = मौजूद। स्थगित = ढकदेना। भानु = सूर्य। कर = किरणें। प्रताप = प्रकाश। मुक्ताफल = मोती। प्रकर = समूह। विवृद्ध = बढी। शोभं = शोभा। प्रख्यापयत् = कहना हुआ। त्रिजगतः = त्रिलोकी का। परमेश्वरत्व = परमेश्वरपणा।

अन्वयार्थ—हे प्रभो चांद के तुल्य कांतिवाले होने से मनोहर ऊंचे स्थित ढकदिया है सूर्य की किरणों का तेज जिन्हों ने और मोतियों की लड़ियों के समूह से बढी है शोभा जिनकी तथा तीनलोकों की परमेश्वरता (स्वामिता) को प्रकट करते हुए आपके तीन छत्र शोभते हैं।

भावार्थ—एक लोक का जो स्वामी होता है उसके सिर पर एक छत्र शोभता है। और भगवान के सिर पर तीन छत्र होते हैं सो आचार्य ने यहां यह प्रकट किया है कि यह मोतियों की लड़ियों से जड़े हुए तीन छत्र भगवान् के सिरपर ढुकते हुए यह बतला रहे हैं कि यह तीन लोक के स्वामी हैं॥

ऊंचे रहैं सूर दुति लोप।
तीन छत्र तुम दीपै अगोप॥
तीन लोक की प्रभुता कहैं।
मोती झालर सो छवि लहैं॥ ३१॥

३१—सूर = सूर्य। दुति (द्युति) = शोभा अगोप = प्रकट।

गंभीरताररवपूरितदिग्विभाग,
स्त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः।
सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्खे,
दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ।३२।

गम्भीर = गहरा । तार = ऊंचा । रव = शब्द । रित = पूर्ण करना । दिग्विभाग = दिशायें । त्रैलोक्य = त्रिलोकी । लोक = जन । शुभ = भला । संगम = प्राप्ति भूति = विभूति । दक्षः = चतुर । सत = श्रेष्ठ । धर्मराज = धर्म का राज । जयघोषण = जयकारशब्द । घोषकः = बजाने वाला । सन् = है । ख = आकाश । दुन्दुभि = बाजा । ध्वनति = बजता है । ते = तुम्हारे । यशः = कीर्ति । प्रवादी = कहने वाला ॥

अन्वयार्थ—गम्भीर और ऊंचे शब्द से पूर (पूर्ण) दिये हैं दिशाओं के विभाग जिसने और त्रिलोकी के रहने वाले जीवों को शुभ ऐश्वर्य देने में चतुर तथा उत्तम धर्म का जो राज्य उसके जयकार शब्द का उच्चारण करने वाला जो आकाश में दुंदुभी (बाजा) बजता है वह आपके यशका कथन करणे वाला है ॥

भावार्थ—जिनेन्द्र के जो अष्ट प्रतिहार्य्य में आकाश में बाजा बजता है सो आचार्य कहते हैं कि सो बाजा मानो दश दिशों को व्याप्त होकर यह बताता है कि हे जीवो अब तुम को इस संसार के दुःखों को दूर करने वाली सुख रूप विभूति मिलेगी और मोक्ष मार्ग के चलाने के लिये धर्म का राज प्रवर्तेगा ॥

दुन्दुभि शब्द गहर गम्भीर ।
चहुं दिश होय तुम्हारे धीर ॥
त्रिभुवन जन शिव संगम करैं ।
मानो जय जय रव उच्चरैं ॥ ३२ ॥

मंदारसुन्दरनमेरुसुपारिजात,
सन्तानकादिकुसुमोत्कर वृष्टि रुद्धा।
गंधोदबिंदुशुभमंदमरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥

मंदार=एक जाति का कल्पवृक्ष। सुन्दर=मनोहर। नमेरु, पारिजात, और संतानक=ये सभी कल्पवृक्ष हैं। कुसुम=फूल। उत्कर=समूह। वृष्टि=बारस उद्धा=शुभ। गन्धोद=गन्धोदक। बिन्दु=बूंद। शुभ=उत्तम। मन्द=आहिसता चलने वाली। मरुत्=वायु। प्रपाता=पड़ी। दिव्या=आकाश की। दिवः=आकाश पतति=गिरती है। ते तुम्हारी। वचसां=वाणीयों की। तति समूह॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो गन्धोदक की बूंदों से पवित्र मंदमंद पवन करके गिराई हुई मन्दार, मनोहर नमेरु श्रेष्ठ पारिजात और संतानक आदि कल्पवृक्षों के पुष्प समूह की जो दिव्यवृष्टि आकाश से गिरती है सो आपके वचनों की पंक्ति खिरती है।

भावार्थ—यहां आचार्य ने भगवान् को दिव्य वाणी को दिव्य पुष्पों की उपमा दी है कि हे जिनेश! आप के कल्याणक के समय जो देवता गंधोदक और पुष्पों की वृष्टि करते हैं सो मानो आपके वचनों की पंक्ति ही खिरती है॥

मंद पवन गंधोदक इष्ट।
विविध कल्पतरु पुहप सवृष्ट॥
देव करैं विकसत दल सार।
मानो द्विज पंकति अवतार॥३३॥

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभाविभोस्ते,
लोकत्रयद्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरंतरभूरिसंख्या,
दीप्त्याजयत्यपिनिशामपिसोमसौम्याम्।

शुंभत् = शोभायमान्। प्रभा = कांति। वलय = मण्डल। भूरि = अधिक। विभा = प्रभा। विभु = प्रभु। ते = तेरी। लोकत्रय = तीनलोक। द्युतिमत् = कांति वाला। द्युति = शोभा। आक्षिपन्ती = तिरस्कार करती है। प्रोद्यत = ऊगा हुआ। दिवाकर = सूर्य। निरंतर = लगातार। भूरि = जियादा। संख्या = गिणती। दीप्त्या = कांति से। जयति = जीतती है अपि = भी। निशा = रात। अपि = भी। सोम = चान्द सौम्या = ठंडी।

अन्वयार्थ—हे भगवन् आपकी शोभा वाले कांति के भामण्डल की अधिक प्रभा तीन लोकों के तेजस्वियों के तेज को तिरस्कार करती हुई उदय हुए अनेक सूर्यों के समान तेज वाली भी चांद के समान ठंडो हुई हुई रात को भी कांति से जीत लेती है॥

भावार्थ—हे प्रभो आपके भामंडल की ज्योति का इतना तेज है कि तीनलोक में जितने सूर्यादिक पदार्थ हैं सर्व मंद भासते हैं इतना तेजस्वी होने पर भी सौम्य-पने में रात्री के चन्द्रमा की शीतलता को भी जीतता है॥

तुम तन भामंडल जिन चन्द।
सब दुतिवन्त करत है मन्द॥
कोटि संख्य रवि तेज छिपाय।
शशिनिर्मल नित करे अछाय॥३४॥

३४—भामण्डल = शोभा का मण्डल।

स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः,
सद्धर्मतत्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व,
भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥ ३५ ॥

स्वर्ग = देवलोक। अपवर्ग = मोक्ष। गम = जाना। मार्ग = रास्ता। विमार्गण = खोजना। इष्ट = मित्र। सद्धर्म = श्रेष्ठधर्म। तत्वकथन = यथार्थकथन। एक पटु = एक चतुर। त्रिलोकी = तीनलोक। दिव्यध्वनि = दिव्य शब्द (वाणी)। भवति = होती है। ते = तुम्हारी। विशद = उज्वल। अर्थ = अर्थ। सर्व = सकल। भाषा = जुबान। स्वभाव = आदत। परिणाम = नतीजा। गुण = गुण। प्रयोज्य = प्रयोग किया।

अन्वयार्थ—हे विभो स्वर्ग और मोक्ष में जाने के लिये जो रास्ता उसके ढूंढने या बताने में मित्र (सहायक) तीनलोकों में सच्चे धर्म के तत्व कहने में एक पण्डित साफ साफ अर्थ तमाम जुबानें स्वभाव (आदत) परिणाम (नतीजे) और गुणों करके मिली हुई आप की दिव्य ध्वनि खिरती है॥

भावार्थ—हे भगवन् तीन लोक में जितने पदार्थ हैं सर्व का स्वभाव (खासियत) और स्वर्ग और प्राचीन सत्यधर्म के असली तत्वों को दरशाती हुई सर्व भाषाओं में समझ आने वाली स्वर्ग और मोक्ष में जाने के लिये सच्चा रास्ता बताती हुई जगत् के जीवों की हित् आपकी निर्मल दिव्यध्वनि खिरती है॥

स्वर्ग मोक्ष मारग संकेत।
परम धर्म उपदेशन हेत॥
दिव्य वचन तुम खिरै अगाध।
सब भाषा गर्भित हितसाध॥ ३५॥

३५—मारग = रास्ता।

उन्निद्रहेमनवपंकजपुञ्जकांती,

पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ।

पादौपदानि तव यत्र जिनेंद्र धत्तः,

पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति॥३६॥

उन्निद्र=खिला। हेम=सोना। नव=नया। पंकज=कमल। पुञ्ज=समूह कांति=शोभा। पर्युल्लसत्=बहुत चमकीला। नख=नाखून। मयूख=किरणें। शिखा=लाट (ज्वाला)। अभिराम=मनोहर। पादौ=चरण। पदानि=जगह। तव=तेरे। यत्र=जहां। जिनेन्द्र=जिनेश। धत्तः=धरते हैं। पद्म=कमल। तत्र=वहां। विबुध=देवता परिकल्पयन्ति=कल्पना करते हैं॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र खिले हुए सोने के नए कमलों के समूह के समान कांति वाले और चमकीले नाखूनों की किरणों की शिखा से मनोहर आपके पांव जहां जहां पग धरते हैं। वहां वहां देवता कमल रचते हैं॥

भावार्थ—हे भगवन् चमकती हैं नाखूनों की किरणों की निहायत खूबसूरत शिखा जिनकी ऐसे खिले हुए निर्मल सोने के कमलों के समूह की मानिन्द रोशन आपके चरण जहां जहां कदम धरते हैं वहां वहां देवता कमल रचते हुए चले जाते हैं॥

॥ दोहा छन्द ॥

विकसित सुवरण कमल द्युति।
नखद्युति मिल चमकाहिं॥
तुम पद पदवी जहां धरैं।
तहां सुर कमल रचाहिं॥३६॥

३६=द्युति=शोभा।

इत्थं यथा तव विभुतिरभूज्जिनेन्द्र,
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य।
यादृक् प्रभादिनकृतःप्रहतान्धकारा,
तादृक् कुतोग्रहगणस्य विकासिनोऽपि ॥३७

इत्थं = इस प्रकार। यथा = जैसे। तव = तेरी। विभूति = ऐश्वर्य। अभूत् = हुई। जिनेन्द्र = जिनेश्वर। धर्मोपदेशनविधि = धर्मोपदेशकरने का तरीका। न = नहीं तथा = तैसे। परस्य = दूसरेकी। यादृक् = जैसी। प्रभा = कांति। दिन कृत् = रवि। प्रहतान्धकारा = दूर करदियाहै अन्धेराजिसने। तादृक् = वैसी। कुतो = कहां। ग्रहगण = चांद वगैरह ग्रहों का समूह। विकाशिनः = चमक रहे। अपि = भी॥

अन्वयार्थ = हे जिनेन्द्र! इस प्रकार दिव्य ध्वनि वगैरह विभूतियें जैसे आपकी धर्मोपदेश के विधान में हुई वैसी दूसरे उपदेशक की नहीं होती। जैसी अंधेरे के नाश करणे वाली प्रभा सूर्य की है वैसी प्रकाशमान ग्रहों के समह की कहां॥

भावार्थ—हे प्रभो हे भगवन् शिव मार्ग के बतलाने वाले इस प्रकार दिव्य ध्वनि आदि ऊपर बियान की गई जैसी तेरी विभूतियां धर्मोपदेश करने के समय हुई है वैसी किसी दूसरे अन्य मतावलंवी देवादिक के नहीं हुई क्योंकि जैसी अन्धेरे के दूर करने वाली सूर्य की ज्योति होती है वैसी दूसरे ग्रहादिक की नहीं होती॥

ऐसी महिमा तुम विषै।
और धरै नहिं कोय॥
सूरज में जो जोत है।
नहिं तारागण सोय॥३७॥

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल,
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतंतं,
दृष्ट्वा भयं भवतिनो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥

श्चोतत = गिररहा। (बह रहा)। मद = मद। आविल = व्याप्त। विलोल = चंचल। कपोल मूल = गण्डस्थल। मत्त = मस्त। भ्रमद् = घूमते हुए। भ्रमर = भौंरे। नाद = शब्द। विवृद्ध = बढ़ा। कोप = गुस्सा। ऐरावताभ = इन्द्र के हाथी के तुल्य। इभ = हाथी। उद्धत = मस्त। आपतत् = आपडता हुआ। दृष्ट्वा = देखकर। भयं = डर। भवति = होता है। नो = नहीं। भवत् = आपके। आश्रित = आसरे वाला॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो! बह रहे मद से भीगे हुवे चंचल गालों के मूल पर मस्त, घूम रहे भौंरों के शब्द से बढ़ गया है गुस्सा जिसका इन्द्र के हाथी के समान कांति वाले उन्मत्त ऐसे आते हुये हाथी को देखकर आपके भक्तों को भय नहीं होता॥

भावार्थ—हे प्रभो चाहे कैसा ही भयंकर ऐरावत के तुल्य महामस्त मदोनमत्त गजेन्द्र तेरे भक्तों के सन्मुख मारने के लिये आवे परन्तु तेरे नाम का आश्रय होने से तेरे भक्त वह नहीं डरते॥

॥ छप्पै छन्द ॥

मद अवलिप्त कपोल, मूल अलिकुल झंकारैं ।
तिन सुन शब्द प्रचण्ड, क्रोध उद्धत अतिधारैं ॥
कालवर्ण विकराल, कालवत सनमुख धावे ।
ऐरावत सम प्रबल, सकलजन भय उपजावै ।
देख गजेन्द्र न भय करे, तुमपद महिमा लीन ।
विपति रहित संपति सहित, वरतै भक्त अदीन ॥

३८—मद = हाथीका मद। अवलिप्त = लिपा हुवा। कपोल = गाले। अलि भौंरा। उद्धत = मत्त (मस्त)

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त,
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः ।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥ ३९ ॥

भिन्न = फूटे । इभ = हाथी । कुम्भ = कपोल । गलत् = बह रहा । उज्वल = सुन्दर । शोणित = लहू (खून) । अक्त = मिला हुआ । मुक्ताफल = मोती । प्रकर = समूह भूषित = शोभित । भूमि = पृथ्वी । भाग = हिस्सा । बद्ध = बांधा । क्रम = तरीका क्रमगत = क्रमप्राप्त । हरिणाधिप = शेर । अपि = भी । न = नहीं । आक्रामति = दबा लेता है । क्रमयुग = चरणयुगल । अचल = पहाड़ । संश्रित = सहारा लिये । ते = तेरा ॥

अन्वयार्थ—फाड़दिये जो हाथीयों के कुम्भ उनसे गिर रहे उजले लहू से भीगे हुए मोतीयों के समूह कर शोभित कर दिया है जमीन का हिस्सा जिसने और बांधा है क्रम जिसने ऐसा भी शेर अपने पांवमें पड़े हुए परन्तु आपके दो चरण रूप पर्वत के आसरे होनेवाले को नहीं दबा सकता ॥

भावार्थ—हे भगवन् महाभयंकर हाथियोंके मस्तक के छेदने वाला जिसे देखते ही इन्सान कांप उठे यदि ऐसे शेरके पैरमें भी कोई आपका भक्त फंस जावे तो शेर उसे कुछ भी बाधा नहीं कर सकता । जसे गुफा में अंजना सुन्दरी की सहायता हुई थी ॥

नोट—इस काव्य के भाषा छन्द कवि हेमराज जी कृत में कालदोष से एक ऐसा शब्द प्रचलित होगया था जो मरद के पुशीदा अंग का नाम है जो स्त्रियों के सन्मुख कहते हुए लज्जा आती है सो हमने ठीक कर दिया है ॥

अतिमदमत्त गयन्द, कुम्भथल नखन विदारै ।
मोतीरक्त समेत, डार भूतल सिंगारै ॥
बांकी दाढ़ बिशाल, बदन में रसना हालै ।
भीम भयङ्कर रूप देख जन थरहर चालै ॥
ऐसे मृगपति पग तले जो नर आया होय ।
शरण गहे तुम चरणकी, बाधा करै न सोय ॥३९॥

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम्।
विश्वं जिघत्सुमिव संमुखमापतन्तं,
त्वन्नाम कीर्तनजलं शमयत्यशेषम्॥ ४० ॥

कल्पांतकाल = प्रलयकाल। पवन = हवा। उद्धत = भड़कती। वह्नि = आग। कल्प = बरोबर। दावानल = बनकी आग। ज्वलित = बलती। उज्ज्वल = चमक। उत्स्फूलिंग = जिस से चिंगयाड़े निकल रहे हैं। विश्व = जगत्। जिघत्सु = खाने की ख्वाहिश वाला। इव = जैसे। संमुखं = सामने। आपतत् आते हुए। त्वन्नाम = तेरे नाम कीर्तन = कथन करणा। जल = पानी। शमयति = शान्त करता है। अशेष = सकल॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! प्रलयकाल की पवन कर उड़ाये या भड़काये आग के समान बल रहे चमकीले ऊंचे चिनगारों से शोभित संसार के खाने की इच्छा से मानो साम्हने आ रही बनकी तमाम आग को आप का नामोच्चारण रूपजल शांत कर देता है॥

भावार्थ—यद्यपि अग्नि जल से शांत होय है तो भी प्रलयकाल की पवन कर उभारी हुई आसमान तक जिस के भभकारे जारहे हैं चारों तरफ से बलती आ रही ऐसी भयानक अग्नि भी भगवान के नाम रूपी जल से शांत हो जाती है॥

नोट—जैसे सीता सतीकर उच्चारण किये प्रभु के नाम रूपी जलने अग्निकुण्ड को शांतकर कमलों सहित प्रफुल्लित पानी का सरोवर बना दिया था॥

प्रलय पवन कर उठी, अग्न जो तास पटंतर।
वमें फुलिङ्ग शिखा, उतङ्ग पर जले निरन्तर।
जगत् समस्त निगल कर, भस्म करेगी मानों।
तड़तड़ाट दवजले, जोर चहूं दिशा उठानो।
सो इक छिन में उपशमैं, नाम नीर तुमलेत।
होय सरोवर परणमैं, विकसित कमल समेत॥ ४० ॥

रक्तेक्षणं समदकोकिलकंठनीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतंतम्।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशंक,
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंस: ॥४१॥

रक्त = लाल। ईक्षण = आंखें। समद = मस्त। कोकिल = कोयल। कंठ = गला नील = नीला। क्रोधोद्धत = गुस्से से उन्मत्त। फणी = सांप। उत्फण ऊंची फण किये आपतंतं = आ रहे। आक्रामति = दबालेता है। क्रम = पांउ। युग = जोड़ा। निरस्त = बगैर। शंका = शक। त्वत् = तेरा। नाम = नाम। नागदमनी = नागदौन बूटी। हृदि दिलमें। यस्य = जिस के। पुंस: = नर के॥

अन्वयार्थ—हे स्वामिन्! सुरख आंखें वाले मस्त कोयल के गले के समान नीले, गुस्से से उद्धत ऊंची करी है फण जिसने ऐसे आते हुये सांप को "वह पुरुष" निर्भय होकर दोनों पावों से दबा सकता है जिस मनुष्य के दिल में आपके नामरूप नागदौनबूटी है॥

भावार्थ—नाग दमनी एक जड़ी होती है जिस के लगाने से कैसा भी जहरीला सांपने काटाहो बाधा नहीं कर सकता अर्थात् जहर उतर जाता है सो यहां आचार्य कहते हैं कि हे प्रभो आपके नाममें इतना असर है कि जो पुरुष आपके भक्तहैं आप पर निश्चय रखते हैं यदि महाकाला सुरख आंखों वाला गुस्से से भराहुआ सांप ऊंचीफणउठायज़ोर से फुङ्कारे मारता हुआ मुखसे अग्निके चिङ्गाड़े निकालतेहुए किसी आपके भक्तके सन्मुख आवे तो वह उसे देख कर नहीं डरता दोनों पैरों से दबा सकता है यदि वह काट भी खावे तो आपके नाम स्मरण रूपी नागदमन से आपके भक्तों को जहर नहीं चढ़ता॥

नोट—विषापहार में सेठ के पुत्र का जहर उतर गया था॥

कोकिल कण्ठ समान, श्यामतन क्रोधजलंता।
रक्तनयन फुङ्कार मार विष कणि उगलन्ता।
फण को ऊंचा करे वेगही सन्मुख धाया।
तब जन होय निशंक, देख फणपतिको आया।
जो डंके निजपांवको, व्यापे विष न लगार।
नागदमन तुम नामकी, है जिनको आधार ॥४१॥

वल्गत्तुरंगगजगर्जितभीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥ ४२ ॥

वल्गत्=नाचते। तुरंग=घोड़ा। गज=हाथी। गर्जित्=गाजता। भीम=भयंकर। नाद=शब्द। आजि=युद्ध। बल=फौज। बलवान्=जोरावर। अपि=भी। भूपति=राजा। उद्यत्=ऊगरहा। दिवाकर=सूर्य। मयूख=किरणें। शिखा=ज्वाला। अपविद्ध=फूंकागया। त्वत्=तेरा। कीर्तन=कथन। तम=अन्धेरा। इव=जैसे। आशु=जल्दी। भिद=भेद। उपैति=प्राप्त होय है॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो चल रहे नाचते घोड़ों से और हाथियों के गर्जन से भयंकर शब्द वाली बलवान् राजों की फौज युद्धमें आपके नामोच्चारण से ऊगते हुए सूर्य की किरणों की शिखाओं से बींधे हुए अन्धेरे के समान जल्दी नष्ट हो जाती है॥

भावार्थ-यहां आचार्य कहे हैं कि हे भगवन् यदि कोई गनीम बहुत बड़ी फौज का अमघोह लिये हुए घोड़े दौड़ाता हुआ हाथियों को गरजाता हुआ इस कदर गरद गुबार उड़ाते हुए कि सूर्य भी नजर न पड़े जिसको देखकर बड़े बड़े मानी राजाओं के मान गलजावें यदि आपके भक्त के सन्मुख आवे तो जैसे सूर्य के सन्मुख अन्धेरा नहीं ठहरता इसी प्रकार आपके आश्रित के मुकाबले से वह भाग जाता है।

जिस रण मांहि भयानक, शब्द कर रहे तुरंगम,
घन से गज गरजाहिं, मत्त मानो गिर जंगम।
अति कोलाहल मांहिं, बात जहां नांहि सुनीजै,
राजन को परचण्ड, देखबल धीरज छीजै।
नाथ तुम्हारे नाम से, सो छिनमांहिं पलाय,
ज्यूं दिनकर परकाशतैं, अन्धकार मिटजाय॥ ४२॥

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह,
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजय पक्षा,
स्त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभंते ।४३।

कुन्त=भाला (बरछी)। अग्र=अग्रभाग। भिन्न=फटा। गज=हाथी। शोणित=खून। वारि=पानी। वाह=प्रवाह। वेग=जल्दी। अवतार=उतरना। तरणि=तैरना। आतुर=दुखी। योध=योधा। भीम=भयंकर। युद्ध=लड़ाई। जय=जीत। विजित=जीते गए। दुर्जय=दुखसे जीतने योग्य। जेय=जीतने योग्य पक्ष=तरफ। त्वत्=तेरे। पाद=चरण। पंकजावन=कमल समूह। आश्रयी=आसरा लेने वाला। लभंते=लभते हैं॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो आपके चरण कमल रूप बनका आश्रय लेने वाले (भक्त) बरछी के अग्रभाग से भेरे(छेदे) गए जो हाथी उनके खून रूप पानी के प्रवाह में जल्दी से उतरणे तथा पारजाने में दुःखी हो रहे हैं योधा जिस में इस लिये भयंकर युद्ध में जीत लिये हैं दुःखसे जीतने योग्य शत्रुपक्ष जिन्होंने ऐसे हुए हुए जय को प्राप्त होतेहैं॥

भावार्थ—हे भगवन ऐसे बड़े जंगोजदल में कि जहां फौज का घमसान हो जाने से खून की नदियां बहने लग जावे जिसमें बड़े २ योधा फसे हुए दुखी होकर पार जाने में असमर्थ हों ऐसे जंग में मुबतला भी आपके भक्त आपके नाम के स्मरण मात्र से ऐसे अजीत जंग को भी जीतकर फतह पाते हैं॥

मारे जहां गजेन्द्र कुम्भ हथियार विदारे।
उमगे रुधिर प्रवाह,वेग जल से विस्तारे।
होय तिरण असमर्थ,महा योधा बल पूरे।
तिस रण में जिन तोय,भक्त जे हैं नर सूरे।
दुर्जय अरिकुल जीतकर,जय पावैं निकलंक।
तुम पद पंकज मन बसैं, ते नर सदा निशंक॥ ४४॥

अंभोनिधौ क्षुभितभीषणनक्र चक्र,
पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ।
रंगत्तरंगशिखरस्थितयानपात्रा,
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति॥४४

अम्भोनिधौ = समुद्र। क्षुभित = क्षोभवाले। भीषण = भय देने वाले। नक्र = नाकू। चक्र = समूह। पाठीन = एक किसम की मछली। पीठ = पीड़ा। भयद = डराने वाली। उल्वण = प्रचण्ड। वडवाग्नि = समुद्र की आग। रंगत् = नाचती। तरंग = लहरें। शिखर = चोटी। स्थित = ठहरे हुए। यानपात्र = जहाज। त्रास = भय। विहाय = छोड़। भवतः = तुम्हारे। स्मरण = याद करणा। व्रजन्ति = जाते हैं॥

अन्वयार्थ—हे भगवन् क्षोभ को प्राप्त हो रहे हैं भयानक नाकूवों के समूह और मच्छ जल जीव और भय देने वाली है वडवा आग जहां ऐसे समुद्र में नाचती हुई लहरों के ऊपर स्थित है जहाज जिनके ऐसे भी आपके स्मरण से (याद करणे से) भय को छोड़ कर चलते हैं॥

भावार्थ—हे भगवन अति गंभीर समुद्र जिस में नाकूवों और बड़े २ ह्वेलमच्छ और बड़े २ सांपों के समूह भरे हुए हों जिसकी लहरें मीलों तक उपर उछल रही हों और जहां जल के जलाने वाली वड़वा अग्नि चल रही हो जिस को जहाज और अग्न बोट भी नहीं अबूर कर सकते जैसे कि सौथपोल (दक्षिणी कुतब) ऐसे भयंकर समुद्र में यदि आपके भक्त गिर जावें तो आपके नामरूपी तारण के आश्रय से उस को तैर कर पार हो जाते हैं॥

नोट—श्री पालभट आदि अनेकापार हुए हैं॥

नक्र चक्र मगरादि, मच्छकर भय उपजावे।
जामें वड़वा अग्नि, दाहसे नीर जलावे।
पार न पावें जास, थाह नहिं लहिये जाकी।
गर्जे जो गम्भीर, लहर गिनती नहिं ताकी।
सुख सो तिरे समुद्र को, जे तुम गुण सुमराहिं।
चपल तरङ्गन के शिखर, पार जान ले जाहिं॥ ४४॥

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः,
शोच्यां दशामुपगतागतजीविताशाः।
त्वत्पादपंकजरजोऽमृतदिग्धदेहा,
मर्त्या भवंति मकरध्वजतुल्यरूपाः॥ ४५॥

उद्भूत = होगया। भीषण = भयंकर। जलोदर = पेटका रोग। भार = भार। भुग्न = कुबड़े। शोच्या = शोक के योग्य। दशा = हालत। उपगता = प्राप्त हुवे। गत = दूर हो गई। जीवित = जीना। आशा = आस। त्वत्पाद = तेरे पांव। पंकज = कमल। रजो = धूल। अमृत = अमृत। दिग्ध = लिपा। देह = शरीर। मर्त्या = मनुष्य भवन्ति = होय हैं मकरध्वज = कामदेव। तुल्य = समान। रूप = शकल॥

अन्वयार्थ—हे प्रभो! बढ़ गए भयंकर जलोदर रोग के भार से टेढे होगये और दूर होगई है जीवने की आशा जिनकी इसी लिये शोक की दशा (हालत) को प्राप्त हो गए ऐसे भी मनुष्य आपके चरण कमल की धूल रूप अमृत से लिप गए हैं शरीर जिनके सो तो कामदेव के तुल्य रूप वाले होजाते हैं।

भावार्थ—हे भगवन् आपके चरणों की रज में इतना असर है कि छोटे मोटे रोग का तो क्या जिकर जलोदर सारखे ला इलाज मरज जिनको होजाने से उनकी जिन्दगी की आशा नहीं रहती आपके चरणों की रज रूपी अमृत शरीर के लगाने से उनके सर्व रोग दूर हो कामदेव समान कंचन वरण शरीर होजाता है।

नोट—भगवान् के प्रतिबिम्ब के प्रक्षालन मात्र जल लगाने से कोटीभट श्रीपाल का कुष्ट दूर हो सुवर्णसा शरीर हुआ है।

महा जलोदर रोग, भार पीड़ित जे नर हैं।
वात पित्त कफ कुष्ट, आदि जे रोग गहे हैं।
सोचित रहैं उदास, नाहिं जीवन की आशा।
अति घिनावन देह, धरैं दुर्गन्ध निवासा।
तुमपद पंकज धूलको, जे लावैं निज अङ्ग।
ते नीरोग शरीर लहि, छिन में होंय अनंग॥ ४५॥

आपादकंठमुरुशृंखलवेष्टितांगाः,
गाढंबृहन्निगडकोटिनिघृष्टजंघाः।
त्वन्नाममंत्रमनिशंमनुजाः स्मरंतः,
सद्यःस्वयंविगत बंधभया भवंति ॥४६॥

आपाद कंठ=पांव से कंठ तक। उरु=बड़ा। शृंखल=सांकल। वेष्टित=लपेटा गया। अंग=शरीर। गाढं=मजबूत। बृहत्=बड़े २। निगड=जंजीर (सांकल)। कोटि=अग्रभाग। निघृष्ट=घसगई। जंघा=टांगें। त्वन्नाममन्त्र=तुम्हारा नाम रूपी मन्त्र। अनिश=दिनरात मनुज=मनुष्य। स्मरन्तः=याद करते हुए सद्यः=शीघ्र। स्वयं=अपने आप। विगत=दूर होगया। बंध=बंधन। भय=डर। भवंति=होजाते हैं॥

अन्वयार्थ—पांव से गले तक बड़े भारी सांकल से लपेटे हैं शरीर जिनके गाढ़ी बेड़ी की कोटी से घिस गई है जंघा जिनकी ऐसे मनुष्य तुम्हारे नामरूप मंत्र को दिनरात जपते हुए जल्दी ही अपने आप टूट गए हैं बंधन जिन के ऐसे हो जाते हैं॥

भावार्थ—हे प्रभो आपके नाम मात्र में इतना प्रभाव है कि जब राजा आदि संकलों से जकड़ कर भोरों में डाल ताले ठोक देते हैं तब ऐसी कठिन भीड़ पड़ने पर आपके भक्त आपका नाम रूपी मंत्र का स्मरण करते हैं तो अपने आप ही तमाम बंधन टूट सर्व भय दूर हो जाते हैं॥

पांव कण्ठ से जकर, बान्ध सांकल अति भारी।
गाढ़ी बेड़ी पैर माहिं, जिनजांघ विदारी।
भख प्यास चिन्ता शरीर, दुःख जे बिललाने।
शरण नाहिं जिन कोय, भूप के बन्दीखाने।
तुम सुमरत स्वयमेव ही, बन्धन सब खुल जाहिं।
छिनमें ते संपति लहैं, चिन्ताभय बिनसाहिं॥ ४६

मत्तद्विपेंद्रमृगराजदवानलाहि,
संग्रामवारिधिमहोदरबंधनोत्थम्।
तस्याशुनाशमुपयातिभयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमंमति मानधीते ॥४७॥

मत्त=मस्त। द्विपेन्द्र (गजराज)=बड़े हाथी। =मृगराज=शेर। दवानल=बनकी आग। अहि=सांप। संग्राम=युद्ध (लड़ाई)। वारिधि=समुद्र। महोदर=जलोदर के समान पेट का रोग। बंधन=बांधा जाना। उत्थं=उठा। तस्य=उसका। आशु=जल्दी। नाश=नष्ट। उपयाति=हो जाता है। भयं=खौफ। भिया=डर से। इव=तरह। यः=जो। तावकं=तुम्हारा। स्तव=स्तोत्र। इमं=इसे मतिमान्=बुद्धमानअधीते=पढ़ता है॥

अन्वयार्थ—जो बुद्धिमान आपके इस स्तोत्र को पढता है उस का मस्त हाथी, शेर, बनकी आग, सांप, युद्ध, समुद्र, जलोदर, बंधन, इनसे पैदा होने वाला भय शीघ्र ही उससे डरता हुआ नष्ट हो जाता है॥

भावार्थ—यहां आचार्य कहे हैं कि हे भगवन् ऊपरके छन्दों में वर्णन करे जो मस्त हाथी, शेर, वन की आग सांप युद्ध समुद्र जलोदर रोग बंधन आदि अष्ट प्रकार के महा संकट जो बुद्धिमान् आप के भक्त विपदा के समय आपका यह स्तोत्र पढें उन की हर प्रकार की मुसीबतें डर कर एक क्षण मात्र में नष्ट हो जाती हैं अर्थात् उनको कैसी ही विपदा पेश क्यों न आजावे यदि वह मुसीबत के वक्त आपके इस स्तोत्र का पाठ करें तो उनकी सर्व तकलीफात फौरन दूर हो वह अमन चैन हासिल करते हैं॥

महामत्त गजराज, और मृगराज दवानल।
फणपति रण परचंड नीरनिधि रोगमहाबल।
बन्धन ये भय आठ, डरप कर मानोनाशें।
तुमसुमरत छिन माहि, अभय थानक परकाशें।
इस अपार संसारमें शरण नाहिं प्रभु कोय।
याते तुम पद भक्त को भक्ति सहाई होय॥ ४७॥

स्तोत्रस्रजं तव जिनेंद्रगुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया विविधवर्णविचित्रपुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रं,
तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

स्तोत्रस्रजं = स्तोत्र रूप माला को । तव = तुम्हारी । जिनेन्द्र = जिनेश । गुण = माधुर्यादि काव्य गुण, वा, सूत । निबद्ध = गून्थी (रची) भक्त्या = भक्ति से । मया = मैंने । विविध = अनेक प्रकार की । वर्ण = रंग । विचित्र = कई रंग की । पुष्पा = फूल । धत्ते = पहिनता है । जनः = मनुष्य । यः = जो । इह = यहां । कंठ = गला । गता = पड़ी हुई । अजस्र = निरंतर (लगातार) । तं = उसे । मान = इज्जत । तुंग = ऊंचा । वा "मानतुंग" कवि का नाम है । अवशा = न वश होने वाली । समुपैति = अच्छी तरह प्राप्त होय है । लक्ष्मी = श्री, शोभा, मुक्ति ॥

अन्वयार्थ—हे जिनेश ! भक्ति करके तुम्हारे गुणों से गून्थी हुई अनेक अक्षर रूप विचित्र हैं फूल जिसमें कंठ में प्राप्त इस स्तोत्र रूप माला को जो पहिन लेता है मान से ऊंचे उस मनुष्य को भी लक्ष्मी (मुक्ति) प्राप्त होती है ॥

भावार्थ—इस स्तोत्रके पढ़नेका महात्म्य यह है कि इस में वर्णन करे जो जिनेन्द्र के गुण वही भया तागा और इस के शब्द वही भये रंग विरंग के फूलों की माला जो नर कंठ में पहने अर्थात् इस को कंठ कर नित्य पढ़ें वह इज्जत, लक्ष्मी आला दरजे के बरतवे खिलत और स्त्री पुत्रादिक हर किसम के मनोवांछित कायम रहने वाले फलपाय मुक्ति के भागी होवेंगे ॥

यह गुण माल विशाल नाथ तुम गुणन सवारी ।
विविध वर्ण के पुष्प, गून्थ मैं भक्ति विधारी ॥
जोनर पहिरे कंठ भावना मनमें भावे ।
मानतुङ्ग वह निज अधीन शिवलक्ष्मी पावे ॥ ४८

दोहा—भाषा भक्तामर कियो, हेमराजहितहेत ।
जे नर पढ़ें स्वभाव सों ते पावें शिव खेत ॥

सूचीपत्र।

यह पुस्तकें हमारे यहां बिकती हैं।

हमारी छपवाई हुई पुस्तकों के नाम।

शुद्ध पंचकल्याणक तिथियों के चार चौवीसी पूजन पाठ संग्रह का महान ग्रंथ अर्थात् १ संस्कृत चौवीसी पूजा पाठ २ भाषा चौवीसी पूजा पाठ रामचन्द्रकृत ३ भाषा चौवीसी पूजापाठ वृन्दावनकृत ४ भाषा चौवीसी पूजा पाठ बखतावर कृत यह चारों पाठ एक ग्रन्थाकार खुले पत्रों में शुद्ध पंच कल्याणक तिथियों के छपे हैं ५) रु० इसमें कमीशन नहीं काटा जाता क्योंकि इसका पूरा दाम १०) है

हरवंश पुराण महान ग्रन्थ ५) इसमें कमीशन नहीं काटा जाता क्योंकि इसका पूरा दाम ... ६) है।

श्रीपाल चरित्र भाषा छन्द बन्द १॥)

नई जैनतीर्थ यात्रा बड़ी ... १)

सुकुमाल चरित्र बड़ा भाषा ... १)

जैन कथा संग्रह स्त्रियों के संतान पैदा होने की विधि और इलाज सहित १)

जैनबाल गुटका प्रथम भाग बड़ा जैन पाठशालाओं में पढ़ाने योग्य |=)

दर्शन कथा भाषा छंद बन्द ।≈)

चार दान कथा बड़ी ... ... ।)

शील कथा भाषा छंद बन्द ... ।≈)

दो निशि भोजन कथा बड़ी छोटी =)॥

नित्य नियम पूजा देवशास्त्र गुरू शुद्ध संस्कृत पूजा तथा भाषा पूजा =)॥

१०५ दिगम्बर भाषा जैन ग्रन्थों के नाम ... ... ≈)

कुवेरदत्त के १८ नाते ... ≈)

बारह भावना संग्रह ... ...)॥।

छह ढला संग्रह धानत, बुधजन, दौलत तीनों पाठों की इकट्ठी एक पुस्तक =)

श्री नेमनाथ का ब्याहला प्रश्नोत्तर बारह मासादि राजल नो पाठ ।≈)

यमनसैनचरित्र मुनियमनसैन का वृत्तान्त मुनिवर के अहार की विधि ....।)

तथा जिल्द सहित ... ... ।॥

तत्वार्थ सूत्र मूल संपूर्ण ... ... ≈)

भूधर जैन शतक अर्थ सहित ... ।)

भक्तामर भाषा कठिन अर्थ सहित ≈)

मिलने का पता — हकीम ज्ञानचन्द्र जैनी

मालिक दिगम्बर जैनधर्म पुस्तकालय लाहौर।

हमारी जडी बूटियों के इलाज में स्त्री को जरूर गर्भ रह जाता है

यह इलाज हम जंगल की जडी बूटियों से करते हैं हमारे इलाज से जरूर ग रह जाता है जिसे इलाज करना हो हमसे हमारा इश्तिहार मंगा कर पढे ॥

स्त्रियों के पगर (सुफेद वीर्य्य गिरने) का इलाज ।

जिस स्त्री के बीस वर्ष से भी सुफेद वीर्य्य गिरता हो हमारी जडी बूटियों इलाज से बिलकुल बंद हो जाता है जिसके कपडे बंद हो गये हों हमारी जडी बूटिर के इलाज से कपडे जारी हो कर हरमास बराबर होने लगते हैं ॥

पुरुषों के वीर्य की बिमारियों का इलाज ।

जिस पुरूष का वीर्य्य पानी समान भी पतला हो गया हो आतशक के जखम हो पुराना सुजाक हो खून गंदा हो गया हो ना मरद होगया हो हमारे इलाज से बिल कुल नीरोग हो कर काया स्वर्ण समान हो जाती है ॥

पुराने जखमों का इलाज ।

जिन बिमारों को डाक्टर यह कहें कि इसकी टांग या बांह बदून काटे इसके जखम अच्छे नहीं हो सकते हमारी जडी बूटियों के मल्हम से वर्षों के सडे जखम दूर करके काया नीरोग हो जाती है ॥

फालिज का कामिल इलाज ।

जिसे फालिज मार गया हो अधरंग मार गई हो टांग बांह मुंह मुडने गया हो हमारी बूटियों के इलाज से मनुष्य बिलकुल तंदुरुस्त हो जाता है ॥

हम दवा नहीं बेचते ।

हम दवा नहीं बेचते और न दवा भेज सकते हैं जिसे इलाज कराना हो हमें बुला कर इलाज करवावे हम हकीम हैं वाय पित्त कफ बीमार के मिजाज माफिक सरदी गरमी चतुरमास मौसम के अनुसार सोच समझ कर इलाज करते हैं ॥

हमारी फीस बहुत बडी है ।

हम मामूली फीसपर इलाज करने नहीं जाते हमारी फीस हाथी जैसा पेट इतनी बडी है कि बडे धनवान हो देसकते हैं जो हमको बुलाकर इलाज करवावे हमारा मुलाजम सहितआनेजानेका किराया खरच दवा का दाम रोजाना रसोई खरचभीदेना पडता है

☞ हमारा पताः- **हकीम ज्ञानचंद्रजैनी ।**

महल्ला अनारकली नीला गुम्मज लाहौर